Chapter-4

4

:: चतुर्थ अध्याय ::

:: स्वातंत्र्योत्तरकाल के दलित-चेतना से अनुप्राणित हिन्दी उपन्यास ::

A Dhaval PRODUCT A'BAD

: चतुर्थ अध्याय :

: स्वातंत्र्योत्तर काल के दलित चेतना से अनुप्राणित -

हिन्दी उपन्यास : ﴾1948 से अद्यावधि﴿

प्रास्ताविक :

पूर्ववर्ती अध्यायों में निर्दिष्ट किया जा चुका है कि 19 वीं - 20 वीं शताब्दी के धार्मिक, सामाजिक आन्दोलनों, विवेकानन्द, महात्मा गांधी, डॉ० बाबा साहब आम्बेडकर प्रभृति महानुभावों के प्रयत्न तथा निरंतर परिवर्तित वैश्विक प्रवाहों के फलस्वरूप समाज के प्रबुद्ध वर्ग में दलित चेतना का आविर्भाव हुआ । सहस्त्राधिक वर्षों से पीड़ित और

शोषित दलित वर्ग के प्रति जो अत्याचार और अन्याय होते थे उसे लेकर वैचारिक मुहीम चलायी गयी । स्वाधीनता संग्राम के समय सामाजिक उत्थान के जो अनेक प्रयत्न चल रहे थे उनमें अस्पृश्यता निवारण भी एक प्रमुख एवं अनिवार्य मुद्दा था । स्वाधीनता पूर्व तथा स्वाधीनता बाद कई ऐसे विधि-विधान निर्मित हुए जिनमें दलितों के कल्याण पर गंभी विचार - विमर्श हुए परन्तु इसका जो गुणात्मक अन्तर दृष्टिगत होना चाहिए वह अभी तक नहीं हो रहा है । स्वातंत्र्योत्तर काल में भी दलितों पर होने वाले अत्याचारों का सिलसिला बन्द नहीं हुआ है और ग्रामीण क्षेत्रों में उनकी सामाजिक , आर्थिक स्थिति में भी कोई खास गुणात्मक परिवर्तन नहीं आया है । फलतः बेलछी काण्ड, पारस बिगहा काण्ड, रणमल पुरा कांड, भाँवरी बाई काण्ड, जैसी लोमहर्षक घटनाएं सामने आ रही हैं । अनेक लेखकों और कवियों ने स्वातंत्र्योत्तर कालीन इस मोहभंग की छवी को अपने -अपने ढंग से उकेरा है । माखनलाल चतुर्वेदी द्वारा प्रणीत "कस्में रावी के तट खायी" - यमुना के तट तोड़ चले" या रामधारी सिंह दिनकर द्वारा प्रणीत रचना "अटका कहां स्वराज" तथा सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की कविता "पंचमहाभूत" में आजादी के बाद की दलित-गर्हित , पीड़ित जिन्दगी को रूपायित करने का प्रयत्न हुआ है । मेरे निर्देशक प्रो० पारूकान्त देसाई की गज़ल का एक शेर है यहाँ उल्लेखनीय रहेगा -- ॥ खादी, हिन्दी और हरिजन, थे बापू को प्रिय, आबरू तीनों की हुई तार तार क्यों ?" [1] स्वातंत्र्योत्तर कालीन मोहभंगजन्य निराशा को कवि सुदामा पाण्डेय धूमिल निम्न शब्दों में अभिव्यक्त करते हैं --" क्या आजादी सिर्फ तीन थके हुए रंगों का नाम है / जिन्हें एक पहिया ढोता है / या इसका कोई खास मतलब होता है /" [2] दरिद्रता और विपन्नता ने मानवीय भावनाओं के कोशों को मान सोख लिया है । धूमिल का मोचीराम कहता है --" मेरी निगाह में / न कोई छोटा है / न कोई बड़ा है / मेरे लिए, हर आदमी एक जोड़ी जूता है / जो मेरे सामने मरम्मत के लिए खड़ा है ।" [3] इससे प्रतिफलित होता है कि

अछूतों की समस्याओं का निराकरण अभी तक हुआ नहीं है बल्कि आज ये समस्याएं अधिक भयंकर और विद्रूप हो गयी हैं । हाल ही में एक दिसम्बर 1997 में बिहार के जहानाबाद जिले के लक्ष्मण पुर बाथे गांव में जो हत्या-काण्ड हुआ, उसमें जो लोग मारे गये उनमें 32 दलित तथा 23 अन्य पिछडी जातियों के थे । रात के सन्नाटे में "रणवीर सेना" जिन्दाबाद और बजरंगबली के नारों के साथ देशी तमंचों, फरसों, मेरा करीब ढाई सौ दरिंदे जातिगत सफाया करने के लिए इन्हीं लोगों पर टूट पड़ते हैं । दूसरे पडोसी गांव में तो हथियार बद्ध दलित रात में पहरा देते हैं, परन्तु बाथे में ऐसा नहीं होता था अतः यह बहुत आसान निशाना था । गांव में बिजली भी नहीं थी और पक्की सड़क गांव से चार कि.मी. दूर थी । जमींदारों की निजी सेना-रणवीर सेना इन तथ्यों से अवगत थी और इसलिए उन्होंने इस गांव को अपना निशाना बनाया ।[4] मार्क्सवादी पार्टी तथा कुछ प्रगतिशील संगठनों के कारण पिछड़ी जातियों में जो चेतना उभर रही है उसे दबा देने के लिए ऐसे हत्याकाण्ड होते रहते हैं । दि0 25 जनवरी 1999 को बिहार के शंकरविघा गांव में इसी रणवीर सेना ने सत्ताईस दलितों को श्वेत कर दिया । इधर गुजरात के डांग जिले में ईसाइयों को लेकर जो वारदात हुई और जनवरी-1999 में उडीसा में एक ऑस्ट्रेलियन पादरी तथा उनके दो बच्चों की निर्मम हत्या की गई , इसे लेकर पूरे देश में विपक्षों ने कोहराम मचा दिया । ऐसा कहा जाता है कि ऐसी वारदातों से दूसरी तरफ ध्यान हटाने के लिए शासक पक्ष ने ही रणवीर सेना के द्वारा यह हत्याकांड करवाया । कुछ भी हो मरता तो दलित ही है । राजनीतिक दावपेचों तथा स्पर्धा में भी दलित का बलिदान लिया जाता है ।

अभिप्राय यह है कि दलित वर्ग की समस्याओं का समाधान अभी भी हुआ नहीं है । फलतः दलित समस्याओं से जुड़े हुए उपन्यासों की परंपरा हमें स्वातंत्र्योत्तर काल में भी मिलती है । बल्कि इस काल में ही अधिकांश लेखन भी उभर कर आया है । प्रस्तुत अध्याय में दलित समस्याओं से जुड़े ऐसे उपन्यासों पर विचार करने का हमारा उपक्रम है ।

§1§ मैला आंचल :---

फणीश्वरनाथ रेणु कृत "मैला आंचल" आलोच्य विषय की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण उपन्यास है । इसमें लेखक ने बिहार के पूर्णिया जिले के मेरीगंज गांव की कथा को चित्रित किया है। उसमें निरूपित समय स्वतंत्रता के पूर्व तथा स्वतंत्रता के बाद के कुछ वर्षों का है । उसका प्रकाशन सन् 1954 में हुआ था । सन् 1947 में भारत स्वाधीन हुआ । अतः स्वाधीनता के उपरांत तीन-चार वर्षों की राजनीतिक गतिविधियों को इसमें लेखक ने रेखांकित किया है ।

मेरीगंज गांव में विभिन्न जातियों के लोग हैं । विभिन्न जातियों को यहां टोलों का नाम दिया गया है -- मालिक टोला , कायस्थ टोला, यादव टोला, राजपूत टोला, सिपैहिया टोला, धनुकधारी टोला, दुसाध टोला तथा कोयरी टोला आदि । गांव के सभी बड़े बड़े किसानों के अपने - अपने मजदूर टोले हैं, जैसे -- सिंघ जी का टोला - ततमा और पासवान टोला, तहसीलदार साहब का पोलिया टोला, धानूक टोला, कुर्मी टोला और कोयरी टोला, खेलावन यादव का गुवार टोला और कोयरी टोला । संथार टोले पर किसी का खास अधिकार नहीं है ।[5]

इन जातियों में बात-बे-बात परस्पर झगड़े होते रहते हैं । कायस्थ-राजपूत और यादव परस्पर झगड़ते हैं और उन्हें लड़ाने का कार्य ब्राह्मणों का है, क्योंकि उनकी संख्या सबसे कम है । उपन्यास में यह तथ्य भी उभरकर आया है कि कुछ पिछड़ी जातियाँ उठ रही हैं । यादव टोली के लोग बात-बात में लाठी चला देते हैं यह उसका उदाहरण है । संथालों के संघर्ष का चित्रण भी लेखक ने बखूबी किया है । उपन्यास में दलित वर्ग का चित्रण भी पर्याप्त मात्रा में मिलता है । धनुकधारी टोला, दुसाध टोला, कोयरी टोला तथा संथाल टोले की बात आती है । इन टोलों की जातियों को हम दलित वर्ग के अन्तर्गत रख सकते हैं । मालिक टोला,

कायस्थ टोला, राजपूत टोला के लोग दलित जातियों का हर प्रकार से शोषण करते हैं । पुराने तहसीलदार विश्वनाथ प्रसाद, नये तहसीलदार, हरगौरी के पिता सिंह जी राम खेलावन यादव तथा जौतखी काका जैसे लोग उक्त जाति के लोगों को बंधुवा मजदूर के रूप में काम करवाते हैं, इतना ही नहीं उनकी स्त्रियों का शारीरिक रूप से शोषण भी करते हैं । गांव के सभी बड़े लोग दलित जाति की स्त्रियों के साथ जातीय सम्बन्ध रखते हैं । इस यौन-शोषण के पीछे उनकी गरीबी भी एक मुख्य कारण है । उपन्यास में उनके लैंगिक सम्बन्धों का वर्णन, विस्तार से आया है । राम पियरदा की की मां सात बेटों के बाप छित्तन से फंसी हुई है । फुलिया सहदेव मिसिर की आग बुझाती है । इसमें उसकी मां का भी सहयोग है । इस संदर्भ में एक स्थान पर रमजूदास को पत्नी फुलिया की मां को कहती है -- " तुम लोगों को न तो लाज है न शरम । कब तक बेटी की कमाई पर लाल किनारी वाली साड़ी चमकाओगी ? आखिर एक हद होती है किसी बात की । मानती हूं कि जवान बेटी दुधार गाय के बराबर होती है । मगर इतना मत दुहो कि देह का खून ही सूख जाय ।" [6] इस पर फुलिया की मां बिगड़ जाती है और उसकी पोल खोलते हुए कहती है कि वह क्यों गुआर टोली के कलरू के साथ रात-रात भर "रास लीला" रचाती रहती है । इस पर रमजू की स्त्री फुलिया की मां को "सिंधवा की रखैली" कहती है । लरसिंह का सम्बन्ध सोनपतिया कहारिन की लड़की रधिया से है । किसी जमाने में जोतखी काका का सम्बन्ध कालीचरण की मां से था ।

अभिप्राय यह कि निम्न जाति की स्त्रियों के साथ इस प्रकार के सम्बन्ध एक आम बात है और लोग उसे अधिक गंभीरता से नहीं लेते ।

उपन्यास में संथालों के शोषण , संघर्ष और दलन की स्थिति- का भी लेखक ने कुशलतापूर्वक वर्णन किया है ।

सन् 1947 के कांग्रेसी मंत्री-मंडल के समय एक अंग्रेज कलक्टर आया था , उसने वहां की भूमि व्यवस्था को अन्यायपूर्ण समझते हुए उसे

सुधारने की पूरी चेष्टा की थी । जिले भर के भुमिहार, जमींदार और राजा घबड़ा गये थे । जिले के अधिकांश नेता भुमिहार और जमींदार थे । अतः उन्होंने अंग्रेज कलक्टर पर अभियोग लगाया कि वह संथालों को बरगला रहा है और जिले में अशांति फैला रहा है । "कांग्रेस संदेश" के विद्यालंकार को संथालों के प्रति संवेदना थी, परन्तु जिला मंत्री उनको डरा-धमका कर चुप कर देता है । अंग्रेज कलक्टर की बदली हो जाती है, जमींदार भाड़े के लठैतों द्वारा संथाल विद्रोह को दबा देते हैं । रूपये-लाठी के हिसाब से कई सारे लठैतों को संथाल टोली पर छोड़ दिया जाता है , उसमें बहुत से लठैत संथालों के तीरों से जख्मी होते हैं । संथाल टोली के चार आदमी खेत हो जाते हैं, सात घायल होते हैं, एक लड़के की हालत खराब है , दूसरी तरफ तहसीलदार के पक्ष में दश आदमी मारे जाते हैं , बारह बुरी तरह से जख्मी होते हैं, तीस आदमियों को मामूली से घाव लगते हैं । इस संघर्ष में तहसीलदार हरगौरी की मृत्यु हो जाती है ।[7] बहुत से संथाल पुलिस की गोलियों के भी शिकार होते हैं । केवल तहसीलदार हरगौरी को छोड़कर जो क्षति पहुंची है वह दलित जाति के ही लोग हैं । चाहे वे जमींदारों के लठैत हों या विपक्ष के संथाल । जिन संथालों को अस्पताल में भर्ती किया जाता है , उनमें से भी नौ संथालों को गिरफ्तार कर लिया जाता है । जमींदारों की ओर से कोई गिरफ्तार नहीं होता, पुलिस अपने ढंग से कार्यवाही चलाती है, जिसमें कालीचरण , कॉमरेड वासुदेव तथा डॉ० प्रशांत पकड़े जाते हैं और उनको संथालों को भड़काने के जुर्म में सजा होती है ।

इस प्रकार इस संघर्ष के फलस्वरूप संथालों को जमीन तो नहीं मिलती, उसके स्थान पर जेल मिलती है परन्तु यह संघर्ष एक दूसरी तरह से निष्फल होकर भी व्यर्थ नहीं जाता । तहसीलदार विश्वनाथ का हृदय पसीज जाता है और वे अपनी प्राणप्यारी बेटी का विवाह डॉ० प्रशांत से कर देते हैं । इस प्रकार डॉ० प्रशांत तहसीलदार के दामाद और एक मात्र उत्तराधिकारी हो जाते हैं । डॉ० प्रशांत संथालों को उनकी जमीन सौंप

देते हैं । इस प्रकार उपन्यास को एक आदर्शवादी मोड़ दिया गया है ।

§2§ मंगलादेय :--

ब्रजभूषण द्वारा प्रणीत "मंगलादेय" उपन्यास एक आदर्शवादी ढंग का उपन्यास है । जिसमें अछूत कन्या मंगला का विवाह उपन्यास के नायक उदय से करवाया जाता है । प्रस्तुत उपन्यास में हमें दो तरह के पात्र मिलते हैं - अच्छे और बुरे । अच्छे पात्र दैवी गुणों से सम्पन्न हैं तो बुरे पात्रों में आसुरी वृत्तियों की बहुलता दृष्टिगोचर होती है । मानवीय तथा दैवीगुणों से सम्पन्न पात्रों में मंगला, ह उदय, प्रभुदास, लखन, कलंधर आदि पात्र आते हैं , जो अपने मानवोचित कर्मों के सौंदर्य से प्रदीप्त होते हैं । आसुरी प्रवृत्ति से युक्त पात्रों में गोपू अर्थात् गोपीनाथ, बंसी महा-राज, पुजारी, राम शरण, रामनाथ आदि पात्र हैं, जो निरंतर अनीति , अन्याय तथा दुष्कर्मों से संपृक्त रहते हैं । उदय के पात्र कोलक तो उदात्तता की चरमसीमा पर पहुंचा दिया गया है । उसके साथ जो बुरा व्यवहार करता है, वह उसका भी भला ही करता है । उपन्यास का कथानक उदय, मंगला और गोपीनाथ के आसपास वर्तुलित है । उदय का पिता प्रभुदास एक साधारण हैंसियत का किसान है । दूसरी तरफ गोपीनाथ का पिता रामनाथ एक सम्पन्न, साहूकार एवं किसान है । दोनों अपने-अपने पुत्रों को पढ़ने के लिए शहर भेजते हैं । बुद्धिप्रतिभा, परिश्रम तथा लगन के कारण उदय पढ़ - लिखकर डॉक्टर बन जाता है । दूसरी तरफ गोपू अपनी चरित्रहीनता, अकर्मण्यता तथा प्रपंची बुद्धि के कारण असफल होकर गांव में लौटता है । उदय उच्च शिक्षा प्राप्त न कर सके उसके लिए भी वह तरह-तरह के प्रपंच रचता है, जिनमें वह सफल नहीं हो पाता । अतः वह उदय को बदनाम करने की भी नाकाम कोशिश करता है ।

कथा का दूसरा मोड़ उदय और मंगला का प्रेम है । यह दोनों बचपन के साथी हैं और बचपन का यह प्रेम गहरे प्रणयभाव में परिवर्तित होता

है । मंगला उदय को प्रेम करे यह गोपू को बरदास्त नहीं है । फलतः एक बार मंगला को छेड़ने की कोशिश भी करता है, परन्तु मंगला इतनी प्रखर और चतुर है कि गोपू को धक्का मारकर गिरा देती है और इस प्रकार रास्ते पर चली जाती है ।

जैसा कि ऊपर निर्दिष्ट किया गया है उदय एक आदर्शवादी पात्र है । आजकल प्रत्येक व्यक्ति पढ़-लिखकर शहर में जाना चाहता है । गांव से शहरों की ओरश यह जो संक्रमण है, उसको गहरी वेदना के साथ डॉ० शिवप्रसाद सिंह ने "अलग-अलग वैतरणी" में रेखांकित किया है । उदय डॉक्टरी पढ के गांव में ही अपना अस्पताल खोल देता है । गोपू अपनी बुरी आदतों के कारण कुछ पढ़-लिख नहीं पाता, अतः लौटकर बुद्धु गांव में आये " वाली कहावत को चरितार्थ करते हुए अपने गांव वापस आ जाता है और अपने पिता रामनाथ के व्यापार को आगे बढ़ाने का काम हाथ पर ले लेता है । साथ ही साथ उसकी आवारागर्दी भी चालू रहती है । वह माल की संग्रहखोरी करके लोगों को शोषण करता है । एक बार वह मंगला को धोखे से अपनी दुकान पर बुलाता है और गोदाम में उसकी इज्जत लूटने का प्रयास करता है परन्तु ऐनवक्त पर कलंधर वहां आ जाता है और वह मंगला की रक्षा करता है । इस प्रकार मंगला गोपू की हवस का शिकार होते होते बच जाती है । इस काण्ड में कारण कलंधर और गोपू में जो हाथा-पाई होती है उसमें गोपू के माचिसों के भंडार में आग लग जाती है । गोपू और बंशी महाराज दोनों इस आग में जलने लगते हैं तब डॉ० उदय लोगों के मना करने पर भी अपने प्राणों की बाजी लगाते हुए इन दोनों को बचा लेते हैं । उदय के इस महान और उदार व्यवहार के कारण गोपू, बंशी महाराज एवं पुजारी का हृदय परिवर्तन होता है । बंशी महाराज अस्पताल के निर्माण के लिए डॉ० उदय को एक लाख रूपये दान स्वरूप देता है तो दूसरी तरफ गोपू के पिता रामनाथ अपनी सारी सम्पत्ति अस्पताल को भेंट कर देते हैं । मंगला और उदय का विवाह हो जाता है । इस प्रकार उपन्यास के

अंत में सारे दुष्ट एवं घाघ पात्र सुधर जाते हैं । उपन्यास "अन्त भला तो सब भला" वाली कहावत को चरितार्थ करता है । यद्यपि वास्तविक जगत में ऐसा होना मुमकिन नहीं है तथापि लेखक ने एक आदर्श की संभावना पाठकों के सामने रखी है ।

यद्यपि लेखक ने समस्याओं का सरलीकरण कर दिया है , तथापि कहीं कहीं दलित चेतना को उभारने का कार्य हुआ है । उदय जब डॉक्टर बनकर गांव आता है , तब लखन को अपने साथ खाने पर बिठाता है । इसके परिणाम स्वरूप पुजारी उदय को मंदिर प्रवेश से रोंकता है, तब उदय कहता है — " पोथियों का धर्म अब थोथा हो गया । अब तो इन्सानी धर्म का दौर है पुजारी जी जो इन्सान इन्सान से नफरत करना सिखावें वह धर्म नहीं अधर्म है ।" [8]

इस सन्दर्भ में बरसों पहले के उग्र जी . के विचार द्रष्टव्य रहेंगे —" इधर सदियों से हमारे धर्म की परिभाषा कहीं अधार्मिक हो गयी है । ﴾बुधुआ की बेटी﴿ * ... मुसलमान भी आदमी है, हिन्दू भी । मैं आदमी परस्त हूं, हिन्दू या मुसलमान परस्त नहीं ।... ईश्वर कहीं नहीं है । गरीबों और बुरखों पर अपनी हुकूमत कायम रखने के लिए अमीरों और दुनिया को नरक बनाने वाले समझदारों की अक्ल अकल ने इस ईश्वर की रचना की है ﴾ईश्वर द्रोही﴿ ।" [9]

﴾3﴿ नदी के मोड पर : दामोदर सदन :---

"नदी के मोड पर" उपन्यास मध्यप्रदेश की आदिवासी जातियों को लेकर लिखा गया उपन्यास है । मध्यप्रदेश में प्रायः आदिवासियों भील नामक जाति निवास करती है । उपन्यास में इस भील जाति की जातिगत एवं चारित्रिक विशेषताओं को चित्रित किया गया है । पुलिस और व्यापारी इन पिछड़े आदिवासियों का किस प्रकार शोषण करते हैं इसे यहां यथार्थतः

चित्रित किया गया है । इसके साथ ही साथ लेखक ने इधर आदिवासियों में जो आर्थिक एवं राजनैतिक चेतना आयी है इसे भी लक्षित किया है । उपन्यास के दो प्रमुख पात्र हैं — अमली और राम सिंह । दो भिन्न विचारधाराओं को प्रस्तुत करते हैं । राम सिंह की सृष्टि लेखक ने भील आदिवासियों में जो नयी चेतना पन रही है उसे रेखांकित किया है । राम सिंह विकास और प्रगति की चेतना को लेकर आदिवासी समाज को उनके प्राचीन परम्परागत मूल्यों और मान्यताओं से विलग करने की चेष्टा करता है । वह ग्राम सुधार के प्रयास भी करता है । वह सहकारी खेती की प्रेरणा देता है । बीडीओ से मिलकर वह ट्रैक्टर वगैरह भी लाता है और सभी आदिवासी ग्रामवासियों को मिलकर खेती करने की प्रेरणा देता है ।

दूसरी तरफ अमली परंपरागत मूल्यों और आदिवासियों की जातिगत विशेषताओं को केन्द्र में रखकर ही सोचती है । अमली पुलिस के बर्बर बलात्कार का शिकार होती है । तब राम सिंह जो अमली का भतीजा भी है, सभी भीलों को संगठित करता है । संगठित करके उन्हें प्रतिशोध के लिये प्रेरित करता है । रामसिंह जो अमली से उन दुष्टों के नाम पूछता है, जिन्होंने उसके साथ कुकर्म किया था, तो अमली कहती है कि इसकी सजा भगवान उनको देंगे । हमें सजा देने की आवश्यकता नहीं है । फिर भी राम सिंह पुलिस से इसका बदला लेता है । अमली परम्परागत आदिवासी जीवन में माननें वाली एक स्त्री है । वह मन से नरसू से प्यार करती हैं, परन्तु दूसरी तरफ पुत्रवती होने के लिये मनकू ओझा से शारीरिक सम्बन्ध स्थापित करने में भी उसे कोई दोष नहीं दिखता । वह निःसंकोच ऐसा करती है । उपन्यास में लेखक ने भीलों की निर्द्वन्द्व और स्वछंद जीवन के कई चित्र उकेरे हैं । इस समाज में होने वाले स्वछंद यौन सम्बन्धों टोने-टोटकों तथा अन्ध-विश्वासों का भी यथार्थ चित्रण लेखक ने किया है ।

प्रस्तुत उपन्यास में रामसिंह एक आदर्शवादी पात्र है । वह अपनी जाति की स्थिति को लेकर निरंतर चिंतित रहता है । रात-दिन

जाति सेवा में व्यस्त रहने के कारण रामसिंह का स्वास्थ्य जब कुछ गिरने लगता है तो काकी अमली उसे कुछ आराम करने की सलाह देती है । काकी की सलाह पर रामसिंह कहता है -- "सुख की बात करती है काकी । आदिवासी के जीवन में सुख है कहां ? " [10] रामसिंह दुःखी रहता है, क्योंकि उसकी चेतना जगी हुई है । वह आदिवासियों की स्थिति पर विचार सापेक्ष ढंग से करता है । वह दुःखी है क्योंकि वह जानता है । उसकी तुलना में अमली आदिवासी जीवन से अधिक संतुष्ट है । वह रामसिंह से कहती है --" बहुत सुख है, रे, ऐसा सुख जो धनी मानी लोगों के नसीब में नहीं होता । हम लोग खुली हवाओं में रहते हैं । थोड़े से आटें और प्याज के टुकडों से खूब मजे से नाचते गाते अपनी जिंदगी गुजार लेते हैं ।"[11]

आदिवासी स्त्रियों के खमीर के विषय में अमली एक स्थान पर कहती है --" हलकैया नामक भील की पत्नी का बदन ठंडी हवा से जब थर-थर कांपने लगता है तब अमली कहती है --" दारी इतनी सी हवा से कांप रही है, तू आदिवासी की औलाद नहीं है । जानती है आदिवासी की औरतें कैसी होती हैं । ... वह किसी भी जंगल, पहाड में बच्चा जनम देती हैं, नाल गाड़ देती हैं और मोली इकट्ठा करने में लग जाती हैं ।" [12]

इस प्रकार जहां अमली अपने आदिवासी जीवन की उन्मयतता स्वतंत्रता और नैसर्गिक जिंदगी तथा परंपरागत जीवन-मूल्यों में अत्यंत खुश है, वहां रामसिंह आदिवासियों की दरिद्रावस्था और लाचारदर्जी की जिंदगी को लेकर दुःखी रहता है । एक बार जब गांव में भयंकर सूखा पड़ता है, तब रामसिंह के प्रयत्नों से शहर से सूखाग्रस्ती विस्तार के निरीक्षण के लिए अधिकारियों का दल आता है और आश्वासन देकर चला जाता है । अतः रामसिंह गांव के लोगों को राहत कार्य में लगाना चाहता है । राम-सिंह सोचता है कि सब लोग मिलकर काम करें और कुछ पैसों को बचावें, ताकि शहर से अनाज मंगवाया जा सके । पर आदिवासी प्रजा तो मस्त होती है, उनके घरों में यदि दो दिन का अनाज है तो अपने को अमीर समझते

हैं । जंगल की खुली हवाओं में सांस लेने वाले तथा पंछी जैसी उन्मुक्त जिंदगी भी जीने वाले आदिवासी अर मर्द और औरत सूखाग्रस्त स्थिति में भी एक-दूसरे के गले में बाहें डालकर मस्ती से नाचते रहते हैं ।

इसी, प्रकार एक बार जब गांव बाढ़ की चपेट में आ जाता है , तब भी रामसिंह लोगों की सेवा में रात-दिन एक कर देता है । सुंदरी तथा उसकी मां सौ-सौ लोगों का खाना बनाती थी । सुंदरी में भी सेवा की लगन थी सुंदरी में अपनी काकी अमली के गुणों को देखकर राम-सिंह उसके प्रति आकर्षित होता है और उसे अपना जीवनसाथी बनाने का फैसला करता है । इस प्रकार सदन जी का यह उपन्यास आदिवासी जीवन को चित्रित करता है । रामसिंह के प्रयत्नों से आदिवासियों के जीवन में जो नयी चेतना और हिलोर आयी है उसको भी लेखक ने दिग्दर्शित किया है । उपन्यास का कमजोर पहलू है उसकी भाषा । उपन्यास कार ने सर्वत्र एक-सी भाषा का प्रयोग किया है । कुछ स्थानों को छोड़कर आदि-वासी लहजा या टोन नहीं आ पाया है ।

४4४ मोतिया : ररमछ :---

"राम कुमार भ्रमर" द्वारा प्रणीत "मोतिया" उपन्यास वर्णाश्रम द्वारा निर्मित जाति-पांति और उंच-नीच की व्यवस्था के दुष्परिणामों को रेखांकित करती है । जाति-पांति और अस्पृश्यता ने इस देश का बंटाढार किया है । यहां पूज्य काका साहब कालेलकर का निम्नलिखित विधान ध्यानार्ह रहेगा --" अमरीका में निग्रो लोगों के साथ जो अन्याय हो रहा है उसकी ओर ध्यान आकर्षित करने का हमें कोई अधिकार नहीं है । अपने यहां हम लोगों ने अस्पृश्यता को चलाया और वह भी धर्म के नाम पर । इसका उदाहरण दुनिया में कहीं मिलेगा ? सच पूछा जाय , तो इस पाप का प्रारंभ अपनी जाति व्यवस्था है और उसमें निहित सार्व-भौम उंच-नींच के भेद से होती है । इस भेद के कारण हम लोगों ने अपने

समग्र राष्ट्र के प्राण का नाश किया है । हमारी पराधीनता, हमारी परवशता, मौलिक चिंतन का अभाव और पुरूषार्थ का नाश -- यह सब इस जातिप्रथा के और इसका समर्थन करने वाली शास्त्रपरायणता के कारण है × ।"[13] प्रस्तुत उपन्यास में मोतिया एक हरिजन युवक है । वह चमार जाति का है । जाति प्रथा के कारण मोतिया जैसा युवक किस प्रकार अपराध की राह पर चल पड़ता है उसका आंकलन इस उपन्यास में हुआ है । मोतिया ब्राह्मणं-पंडित राम आशरे की पुत्री बिंदिया को चाहता है । बिन्दी भी हृदयपूर्वक मोतिया को चाहती है । रामआशरे चुनाव के समय अपने भाषणों में समाजवाद की और जाति-पांति को मिटाने की बात करता है । यथा --" मुझे तब तक चैन नहीं मिलेगा, जब तक मैं ब्राह्मणं , भंगी, चमार, ठाकुर का नाम ही न मिटा दूं । ... सब बराबर हो जायें । मैं आपकी बेटी लू और आप मेरी ।"[14]

रामआशरे के इस भाषण से मोतिया में हिम्मत आती है और वह उसके पास बिंदिया का हाथ मांगने जाता है । ~~ब~~ तब उसे मार-पीट कर बाहर निकाल दिया जाता है । मोतिया को इतना पीटा जाता है कि उसकी हड्डी-पसली एक हो जाती है । इस संदर्भ में मोतिया की कूट - उक्ति ध्यान देने योग्य है --" वह कहता है --" ढोंगी स्साला । ठीक कहती थी बिंदिया । जो बाहर बोलता है वह पंडित राम आशरे नहीं है । भिखारी है, जिसे किसी तरह झूठ बोलकर लोगों के वोट चाहिए । ठग ।"[15]

मोतिया की तो हड्डी पसली तोडी जाती है परन्तु हमारे देश में कहीं कहीं तो ऐसे किस्से बरामत होते हैं, जिनमें अस्पृश्य जाकित के युवकों की सीधे हत्या कर दी जाती है । कुछ वर्ष पूर्व गुजरात के जेतलपुर गांव में एक चमार युवक को इसी कारण जिंदा जला दिया गया था । मेरे निर्देशक प्रो. पारूकान्त जी देसाई तब उस युवक को शोंकांजली देते हुए एक शोक गीत की रचना की थी जिसका शीर्षकथा "जेतलपुर ना वीरा ने

बेनी नी रार" इस गीत में उस युवक की बहन किस प्रकार रो रही है और अपने भाई के हत्यारों को अभिशाप दे रही है उसका वर्णन है ।"[16] मोतिया को बिंदिया से विवाह करने की अनुमति न बिंदिया की जातिवालों की ओर से मिलती है, न स्वयं मोतिया की जातिवालों से । उंची जाति के लोगों को उसमें अपनी हेठी दिखती है और मोतिया की जाति - वाले लोग सदियों की दासता के कारण लघुताग्रंथी से इस कदर पीडित हैं कि स्वयं इसको एक पाप कर्म समझते हैं । मोतिया का पड़ोशी रजुआ कुम्हार एक स्थान पर मोतिया को कहता है --" यह अधरम भी है । मोतिया है छोटी जाति का आदमी । अपने - अपने पुन्न पाप से आदमी छोटा - बड़ा होता है , पर बामन की बिटिया को फुसला कर ससाला ऐसा पाप मोल ले रहा है, जिसके एवज में कई जनम इन्सान की जान ही नहीं मिल सकेगी, नरक में सड़ना होगा ।"[17]

रजुआ मोतिया को भी समझाता है कि राम आशरे समर्थ व्यक्ति है और समर्थ को कोई दोष नहीं लगता । उनका तो कुछ न बिगडेगा पर उसे गांव छोड़कर भागना पड़ेगा । मोतिया के दिमाग में यह बात बैठ जाती है । वह सोचता है कि अब "मोतिया समरथ बनेगा"[18] समाज से प्रतिशोध लेने के लिये वह डाकू जग मोहन सिंह की गैंग में मिल जाता है। अभिप्राय यह कि मोतिया जो एक सीधा-सादा युवक था, वह डाकू बन जाता है । मोतिया को डाकू बनाने वाली जो प्रक्रिया है, वह अमानवीय जाति-व्यवस्था प्रथा पर आधारित है । वह सामान्य साधारण व्यक्ति का जीवन न जी कर आक्रोश आतंक और दहेशत से भरा अपराध जीवन जीने पर विवश हो जाता है । एक अच्छा खासा आदमी अन्यायपूर्ण समाज व्यवस्था के कारण अपराधी बन जाता है , वही हमारी समाज व्यवस्था की बिडम्बना है । "नाच्यो बहुत गोपाल का मोहना भी डाकू बन जाता है । यदि अपराधी जीवन पर छान-बीन हो तो ज्ञात हो सकता है कि ऐसे तो कई "मोतिया" और "मोहना" हैं जो समाज की अव्यवस्था और अन्याय के शिकार होकर

अपराधी जीवन का वरण करते हैं । अतः कहा जा सकता है कि मनुज को धनुज बनानेवाली प्रक्रिया हमारे समाज के भीतर ही मौजूद है । प्रस्तुत उपन्यास इस कटु-सत्य को उजागर करता है ।

(5) एक अकेला :---

"एक अकेला" भी राम कुमार भ्रमर का उपन्यास है । उपन्यास का नायक मास्टर जादौ राम हैं । जादौ राम को एक आदर्श चरित्र के रूप में प्रस्तुत किया गया है । इनके पास धन, शक्ति और साधन श्रोतों का अभाव है । हर दृष्टि से वे कमजोर हैं परन्तु उनके पास चरित्र और विचारों की शक्ति है जो उनको बल देती है । मास्टर जी सही और न्यायपूर्ण जीवन-मूल्यों के लिये आजीवन संघर्ष करते हैं । अपनी नैतिकता और उज्जवल गुणों के कारण कुछ लोग उनसे प्रभावित भी होते हैं, परन्तु असद्-शक्तियों के सामने उन्हें बार-बार पराजय मिलती है । इस पराजय से वे अपने आदर्शों की विजय मानते हैं । दोषपूर्ण समाज व्यवस्था उनके आदर्शों पर निरंतर प्रहार करती रहती है , परन्तु वे थकते नहीं हैं , हारते नहीं हैं , सदैव जूझते ही रहते हैं । उनके इस आदर्श यज्ञ में उनका प्रमुख सहयोगी है धन्ना हरिजन । समूचे उपन्यास में धन्ना मास्टर जी के साथ रहता है, परन्तु अन्ततः वह प्रति-पक्षियों के छल-छद्म का शिकार होकर जादौराम का साथ छोड़ने पर विवश हो जाता है । इस प्रकार लेखक ने एक आदर्शवादी पात्र की परिवर्ती यथार्थवादी ढंग से की है । अतः हम उपन्यास को यथार्थवादी ही कह सकते हैं, क्योंकि समाज में प्रायः ऐसा ही होता है । गुजराती की एक कवि की निम्नलिखित पंक्तियां स्मृति को कौंध जाती हैं-- ईश्वर तारी आ परीक्षा लेवानी प्रथा सारी नथी । जे कईक सारा छेछ ऐमनी दशा सारी नथी । जादौराम जैसे लोग हमारे भ्रष्ट अनैतिक समाज में खप नहीं सकते । मौजूदा व्यवस्था में उनको " Misfit " कहा जा सकता है । ध्यान रहे अमरीका में ऐसे " Misfit " लोगों के लिये

एक अलग से पुरस्कार है ।

मास्टर जादव राम के अतिरिक्त सर्बती देवी नामक नारी पात्र के द्वारा लेखक ने सामाजिक विषमता को रेखांकित किया है । पिछड़ी जाति के लोगों का कारण-अकारण, बात-बेबात जो अपमान होता है, उसका चित्रण भी लेखक ने यथार्थतः किया है । सर्बती देवी अनुसूचित जाति की महिला है और अपने बुद्धिचातुर्य से आई. ए. एस. होकर जिलाधीश बन जाती है । सर्बती देवी आई. ए. एस. में उत्तीर्ण होती है, इतने मात्र से यही प्रमाणित होता है कि बुद्धि प्रतिभा में वह असाधारण रही होगी परन्तु ऐसी सुशिक्षित एवं संस्कारी महिला के लिये भी गांव के ठाकुर, जो खुद जाहिल और गंवार है अपमानजनक शब्दों का व्यवहार करते हैं । उच्च-शिक्षित एवं प्रशासनिक सेवा में रत ऐसी महिला के साथ जब ऐसा व्यवहार होता है तो और लोगों की स्थिति कैसी रहती होगी, उसकी कल्पना सहजतया की जा सकती है । उनके वार्तालाप से एक उदाहरण दृष्टव्य है --" सुना है चमट्टी है... चमट्टी भले ही है, है तो कलेक्टर... यों समझो कि सुवरती के शरीर पर सुरसति की फोटो चिकी है ।" [19]

यहां इस बात का स्मरण रहे कि डॉ0 बाबा साहब आम्बेडकर जब बड़ौदा में प्रशासनिक सेवा में थे तब उनके साथ भी उनके नीचे के मातहत कर्मचारी भी उनके साथ अभद्र, अशालीन एवं अपमानजनक व्यवहार करते थे । यह भी एक वास्तविकता है कि पिछड़ी जाति के लोग जब किसी उच्च पद पर आसीन होते हैं तब कई बार कुछ उंची जाति के लोग अपनी स्वार्थ-पूर्ति हेतु प्रकटतः तो उनकी चापलूसी करते हैं, परन्तु उनकी पीछ पीछे उनके लिये बहुत ही गंदे और अश्लील शब्दों का प्रयोग करते हैं । राम कुमार भ्रमर का यह उपन्यास इस प्रकार के तथ्यों से भरा पड़ा है ।

(6) नयी बिसात :---

श्री चन्द अग्निहोत्री द्वारा प्रणीत नयी बिसात उपन्यास का कथासूत्र (Story-Motif) ग्राम विकास तथा दलितोद्धार है । उपन्यास में एक गांधीवादी आदर्शवादी चरित्र है । उनका नाम है प्रदीप कुमार पाठक । पाठक जी लोगों में मुन्शी भैया के नाम से प्रसिद्ध हैं । गांधीवादी विचारों में पगे हुए होने के कारण पाठक की अच्छी खासी वकीलात छोड़कर गांव में आते हैं । गांव के हरिजनों तथा सर्वहारा वर्ग के लोगों को संगठित करके वे एक आश्रम की स्थापना करते हैं । इस आश्रम के माध्यम से वे दलित वर्ग के लोगों में एक नयी चेतना जगाने का कार्यक्रम करते हैं । और उनके अधिकारों के लिये आन्दोलन चलाते हैं । तथा गांधी द्वारा निर्देशित सत्याग्रह के रास्ते को अपनाते हैं । गांव के चमार तथा पासी जाति के लोगों को संगठित कर वे खेत मजदूरों का एक आन्दोलन चलाते हैं । मुन्शी भैया का आग्रह था कि खेत मजदूरों को सरकार द्वारा निश्चित की गयी मजदूरी मिलनी चाहिए । भला गांव के सामन्तकालीन मूल्यों में जी रहे लोग इस बात को कैसे पचा सकते हैं । बिहार के पारसबिगा में यही तो हुआ था । संप्रति सन् 1999 में प्रजासत्ताक दिन (26, जनवरी) के एक दिन पहले बिहार के जेहानाबाद जिले के शंकर बिगा गांव के इक्कीस दलितों की हत्या रणवीर सेना के लोगों ने की है । रणवीर सेना के लोग, जमींदारों के भाड़ूती गुंडे हैं । बिहार में दलितों की हत्या एक आम बात हो गयी है । दिसम्बर 1997 में लक्ष्मण बिगा गांव में 61 दलितों का संहार किया था । इसके पूर्व जुलाई 1996 में एक दूसरे गांव में 19 दलित की हत्या कर दी गयी थी ।[20]

अभिप्राय यह कि जब दलितों को संगठित करके उनके अधिकारों को लेकर जब कोई मुहीम चलायी जाती है तो उसे अमानुषिक वृत्तियों द्वारा दबा देने की भरचक चेष्टा होती है । मन्नू भंडारी कृत उपन्यास "महाभोज" में भी इस तथ्य को गहरी संवेदना के साथ रेखांकित किया गया है ।

मुन्शी भैया जो आन्दोलन उस आन्दोलन को समशेर सिंह तथा उनके जैसे अन्य ह न्यस्तहित वाले सम्पन्न-शक्तिमान किसान कुचल देते हैं । और उल्टे मुन्शी भैया तथा हरिजनों के खिलाफ रीपोर्ट दर्ज करवाते हैं । न्यायालय में दावा दायर किया जाता है । न्यायालय में झूंठ के सामने सत्य हार जाता है । अपना पक्ष सही ढंग से प्रस्तुत करने में अक्षम मुन्शी भैया को एक वर्ष की सजा होती है । उनके समर्थकों को नव - नव महीनों की सजा होती है ।

मुन्शी भैया का पुत्र सुरेश अपने पिता के कार्य को आगे बढ़ाने का बीड़ा उठाता है परन्तु गांधीवादी मार्ग को न अपनाते हुए - "सठे - साठ्यम समाचरेत" की नीति पर अपनी लड़ाई लड़ने का फैसला करता है । वह ईसाई लड़की मोहिनी से विवाह करते हुए धार्मिक सहिष्णुता का उदाहरण प्रस्तुत करता है । मोहिनी आश्रम के अस्पताल में डाक्टर है । आश्रम की शिक्षा प्रधान गतिविधियों से दलित जाति के लोगों में चेतना का संचार होता है, उन्हें अपने कानूनी एवं मानवीय अधिकारों का ज्ञान होता है । उपन्यास का एक दलित चरित्र है - माता दीन । वह हरिजन है । उसकी लड़की रामकली की सगाई एक वर्ष की अवस्था में हो गयी थी । पांच साल की होते-होते उसकी शादी कर दी जाती है , परन्तु अब मातादीन में नयी चेतना का संचार हुआ है, अतः वह उसका गौना न करके उसे पढ़ाना चाहता है । उसके खिलाफ पंचायत बिठाई जाती है । मातादीन पंचों से कहता है --" पंचों, बिटिया अभी पढ़ रही है । आठ दर्जा पास कर ले तो.... सरकार अपनी है । मान लो, लड़की पढ़-लिखकर कहीं.... किसी स्कूल में ... लग जाय ।" [21] मातादीन के इस कथन पर पंचों की जो प्रतिक्रिया है वह अत्यंत बिडम्बनापूर्ण है । वे कहते हैं --" मातादीन यह बताओं, बाम्हन-ठाकुर पढ़ायेंगे अपने बच्चे चमारिन से ।" [22] पंचों के इस कथन में हमारे समाज की सच्चाई उजागर हुई है और यह प्रत्यक्ष हुआ है कि सरकार की योजनाएं सिर्फ फाईलों में बंद है, आज भी लाखों ऐसे गांव हैं जहां पर छुआछूत की भावना प्रबल रूप में पायी जाती है । यदि किसी स्कूल में दलित

जाति का अध्यापक या अध्यापिका होते हैं तो बच्चों के अभिभावक ही उनके कोमल मस्तिष्कों में छुआछूत की गंदगी भर देते हैं । बच्चों में अध्यापक के प्रति एक पूज्य भाव होना चाहिए , बजाय इसके वे अपने अध्यापक को स्वयं से हीन समझने लगते हैं । यहीं से छुआछूत का बीज उनके दिमाग में पड़ जाते हैं । मेरे निर्देशक डॉ० पारूकान्त देसाई साहब प्रायः अपने गांव का उदाहरण देते हैं, उनके गांव में जब एक दलित शिक्षक आता है तो उन्हें गांव के चमारों के साथ ही रहना पड़ता है । बच्चों के मां-बाप स्कूल छूटने के बाद पहले उनको नदी या तालाब भेजते हैं थे और स्नान किये बाद ही अपने अपने घरों में उन्हें प्रवेश मिलता था, छुआ-छूत की यह भावना शहरों में कुछ कम हुई है । पर दूर-दराज के गांव तो आज भी इस प्रदूषण से मुक्त नहीं हो पाये हैं ।

एक बार समशेर सिंह मातादीन की अनुपस्थिति में उसके घर आता है और मातादीन के बारे में कुछ पूछताछ करके चला जाता है । मातादीन के पड़ोसी इसका गलत अर्थ लगाते हुए रामलली को बदनाम कर देते हैं । मातादीन की जात-बिरादरी वाले पंचायत बिठाते हैं और माता-दीन को बिरादरी बाहर कर दिया जाता है । उस समय रामकली की ~~मौ~~ मां के प्रकोप को देखकर "गोदान" की शिलिया चमारिन की मां और "जल टूटता हुआ" की लवंगी स्मृति में कौंध जाती है । यथा ---
"ये बाभन-ठाकुर हमारी इज्जत मरजाद कुछ समझते हैं ? मुन्शी भैया जुग-जुग जिए । हमारे चमार, पासी आदमी बन रहे । बाभन, ठाकुर जलते हैं । ...चाहते हैं आल-औलाद जन-बच्चे से गोबर उठावें, गोरू चरावें और लत्ता लपेटे रहे ।" 23

दलित वर्ग के प्रति ऊंचे लोगों में जो घृणा और तिरस्कार के भाव हैं और जो नयी चेतना से उन्हें जो खतरा महसूस हो रहा है उसकी भी सटीक प्रस्तुती लेखक ने की है --" सब साले मोटार हैं । भूल गये तब लंगोटी न जुटती थी चमारों को । आज मातादीन की बिटिया कैसा टिमाक करती

है । बाभन-ठाकुर की मेहरारू क्या पहनेगी ऐसे कपड़े ।"[24]

मुन्शी भैया रामकली की जिम्मेदारी मोहिनी को थमा देते हैं और कहते हैं --" यह भतीजी नही, तुम्हारी अपनी बेटी है इसका ख्याल रखना बहू । हमारी चमरोही उजड़ने न पाये ।"[25]

प्रस्तुत उपन्यास के माध्यम से लेखक यह संदेश पहुंचाना चाहते हैं कि जब तक दलितों में काम करने वाले मुन्शी भैया और सुरेश जैसे सच्चे समाज सेवी नही होंगे, तब तक सरकार और कानून के प्रावधान कारगर नहीं हो सकते । दलितोद्धार के पुराने नुस्खे भी अब काम में नहीं आ सकते । अब तो इस "नयी बिसात" पर नये मोहरों को लगाकर खेल को एक नये ढंग से खेलना होगा । उनको उनकी ही चालों से मात करना होगा ।

§7§ एक टुकडा इतिहास :---

दलितोद्धार और दलित चेतना को केन्द्रस्थ रख लिखे गये उपन्यासों में गोपाल उपाध्याय का यह उपन्यास एक अप्रतिम स्थान रखता है । इस उपन्यास में लेखक ने अपने देश में व्याप्त "घृणित एवं अमानवीय जाति व्यवस्था की दुरभिसंधियों और अन्ध परंपराओं के विरूद्ध संघर्ष का बिगुल बजाने में सफल हुआ है । चन्दी देवी §चनुली§ के दुःखद अंत और रतन के संकल्प पर उपन्यास की समाप्ति करके लेखक ने उसकी मार्मिकता को स्थायित्व दिया है । उपन्यास में दलित वर्ग के प्रति रूढ़िवादी समाज की अमानवीयता और दलित वर्ग का इसके प्रति विद्रोह और संघर्ष का जो अनावरत क्रम अंकित किया है, वह बहुआयामी है । सवर्ण युवक द्वारा दलित युवती को अपना लेने पर जिस सामाजिक बहिष्कार को झेलना पड़ता है उसका यथार्थ चित्र इस उपन्यास में प्रस्तुत किया गया है । यथार्थ के धरातल पर चित्रण होने के कारण कान्तमणि की टूटन स्वाभाविक ही है ।"[26]

लेखक ने इस उपन्यास में हरिजन समस्या के अनेक आयामों को छुआ है । कुमाऊं प्रदेश की पिछड़ी जातियों पर शैलेष मटियानी के भी कई

उपन्यासों में भी है , विशेषतः "नाग वल्लरी" के साथ इसकी तुलना की जा सकती है , परन्तु गोपाल उपाध्याय में जो एक विशेष दृष्टि है , वर्गीय चेतना की समझ है, वह मटियानी जी में नहीं है । उपन्यास की नायिका चनुली ⁅चन्दी देवी⁆ है । चनुली एक डूम ⁅हरिजन ⁆ कन्या है, परन्तु उससे आकृष्ट हो कान्तमणि, जो कि एक ब्राह्मण युवक है, विवाह करता है । परन्तु सामाजिक विरोध के कारण चनुली की डोली कान्तमणि के घर नहीं जा सकती । कान्तमणि को भी चनुली के साथ डोमों के साथ रहना पड़ता है । समाज द्वारा अनेक प्रकार की प्रताडनाएं , अपमान, उनसे आजिर आकर कान्तमणि का घुटने टेक देना, चनुली और बेटे रतन को छोड़-कर कान्तमणि का कुछेक हजार दण्ड देकर पुनः जाति-प्रवेश , चनुली का विद्रोह, उसे तथा रतन को मार-मूरकर रस्सों से बांधकर कहीं दूर फेंक आना, पत्थर से रस्सों को काटकर चनुली का मुक्त होना, रतन को लेकर दर-दर की ठोकरें खाते हुए अल्मोड़े के एक आश्रम में काम मिलना, हरिजनोद्धार का काम हाथ पर लेना, चनुली का चन्दी देवी के रूप में प्रस्थापित होना, कांग्रेसी उम्मीदवार के सामने एम. एल. ए. का चुनाव लड़ना पर कुछ वोटों से हार जाना, अपनी दलितोद्धार की प्रवृत्तियों को चलाने के लिए"समता आश्रम" की स्थापना, सवर्णों द्वारा उसका विरोध, आश्रम में आग लगाना, चन्दी देवी का उनके सामने अदालत में जाना तथा अपराधियों को दण्डित कराना, पेड़ से गिरने के कारण कान्तमणि की कमर की हड्डी का टूट जाना, चनुली का उसके पास जाना तथा उसे बरेली अस्पताल में पहुंचाना, उसकी ~~म~~ सुश्रूषा करना, कान्तमणि का पछतावा, पत्नी तथा बेटे रतन को पुनः अपनाते हुए अपनी जमीन-जायदाद उनके नाम कर देना, उस समाजवालों की गहरी प्रतिक्रिया, कान्तमणि के ~~क~~ मरने पर उसके अंतिम संस्कार में किसी का न सम्मिलित होना, चन्दी देवी के आश्रम के नाम में परिवर्तन-श्रीकान्त समता आश्रम", अन्त में चन्दी देवी की मृत्यु होने पर उसके पुत्र रतन के द्वारा अपनी मां के कार्य को आगे बढ़ाने की उदघोषणा जैसी अनेकानेक संघर्षपूर्ण घटनाएं

उपन्यास के तेवर को स्पष्ट करती हैं । रतन के ये शब्द पाठक के मनो-मस्तिष्क में घूमते रहेंगे --"रजा ! डूम तो आज भी डूम ही रह गए हैं । आज भी वे अछूत हैं । फिर तूने खामखाह अपनी जान क्यों दे दी । ×ओं इजा तू नहीं बदल पाई इन लोगों को । मगर ये बदलेंगे इजा, समय इन्हें बदलने को मजबूर कर देगा । सिर्फ तू नहीं देख पाएगी इजा, ते तू... ।"27[8]

§4§ जल टूटता हुआ :---

डॉ0 रामदरश मिश्र द्वारा प्रणीत "जल टूटता हुआ" उपन्यास में स्वातंत्र्योत्तर काल में टूटते हुए जीवन-मूल्यों की पीड़ा को गहरे दर्द के साथ उकेरा गया है । राजनीति की काली छाया ने जीवन के तमाम-तमाम अच्छे मूल्यों को लील लिया है । प्रस्तुत उपन्यास में आजादी के बाद गांव में जो जाति-पांति वाद फैला है उसको यथार्थ के धरातल पर आकलित करने का एक प्रमाणिक प्रयत्न लेखक ने किया है । मूल कथा तो तिवारी पुर गांव के जमींदार महीप सिंह, सतीश, अमलेश जी, दीनदयाल, मास्टर दुग्गन , मास्टर उमाकान्त धनमाल, बनवारी, महावीर आदि उच्च वर्ण के लोगों के आस-पास बुनी गई है परन्तु प्रकारान्तर से उसमें दलित वर्ग के लोगों का जीवन भी समेकित हुआ है ।

प्रस्तुत उपन्यास में दलित जातियों में इधर जो परिवर्तन आया है उसे लक्षित किया गया है । युग के बदलते हुए तेवर यहां दृष्टिगोचर हो रहे हैं । महीप सिंह ने अनउपजाऊ बंजर जमीन का एक टुकडा देकर जगपतिया चमार को अपना बंधुवा मजदूर बना लिया है । वह तथा उसका पूरा परिवार महीप सिंह की चाकरी में खटता है, तब भी उनको दो जून खाना नसीब नहीं होता । फलतः उसका बेटा रमपतिया शहर चला जाता है । रमपतिया को शहर में नौकरी मिल जाती है । परिणामतः इस परिवार की आर्थिक स्थिति में कुछ सुधार आता है । जगपतिया के काम पे न जाने पर महीप सिंह जब गाली-गलौज की भाषा में बात करते हैं तब जगपतिया

कहता है --" बबुआ, गाली मत दीजिए । रमपतिया नौकरी पर गया है, तो क्या हो गया ? नौकरी नहीं करेंगे तो हम लोग खाएंगे क्या ?"[28] यहां यह गौरतलब है कि जगपतिया चमार महीप सिंह को ऐसी खरी-खरी बात सुनाने का जो साहस जुटा पाया है उसके मूल में उसकी सुधरी हुई आर्थिक स्थिति है । अब दलित वर्ग के लोग शहरों में आने लगे हैं और छोटी-मोटी नौकरियां करने लगे हैं , उसके कारण इनकी दबी हुई चेतना भी धीरे-धीरे जग रही है । दलित वर्ग के जो लोग शहर में जाते हैं वे अपने गांव में जाकर शहर की बात बताते हैं , इसके कारण भी उनका उत्साह बढ़ता है और उनमें नई चेतना अंकुरित होने लगती है ।

स्वाधीनता के उपरांत दलित जातियों में जो साहस और आत्मविश्वास बढ़ा है उसकी अनुगूंज प्रस्तुत उपन्यास की हरिजन कन्या लवंगी के कथन में सुनाई पड़ती है । गांव में एक तरफ जहां उच्च वर्ग-वर्ण के लोग दलित स्त्रियों से अवैध संबंध रखते हैं वहां दूसरी तरफ कहीं कहीं ऐसा भी होता है कि सवर्ण स्त्रियां या लड़कियां अपनी यौन लिप्सा की तृप्ति के लिए दलित युवकों को फांसती हैं किन्तु अन्तर यह है कि सवर्णों के अवैध संबंध प्रकट हो जाने पर भी कोई उनको कुछ नहीं कहता, जबकि दूसरी ओर यदि कोई दलित युवक पकड़ा जाता है तो उसकी बुरी तरह से पिटाई होती है, कभी-कभी तो हत्या भी कर दी जाती है । लवंगी का भाई हंसिया एक ब्राह्मण कन्या पार्वती के साथ प्रेम करते हुए पकड़ा जाता है । गांव के लोग उसकी बेदर्दी से बेइन्तिहां पिटाई करते हैं । वे लोग तो उसे जान से मार ही डालते परन्तु तब लवंगी बीच में कूद पड़ती है और दहाडते हुए लोगों को कहती है —" क्या हुआ अगर मेरे भाई ने एक बाभन की लड़की से भला-बुरा किया ?...चमार का खून खून नहीं है ? बामन का खून ही खून है ? हमारी हमारी कोई इज्जत नहीं होती क्या, बामनों की ही इज्जत होती है ?... जब चमरौटी की तमाम लड़कियों पर ये बाबा लोग हाथ साफ करते हैं तो कोई परलय नहीं आती और कोई चमार बामन की लड़की को छू ले तो परलय आ जाती है । ... हरिजनों के नेता, मैं तुमसे फरियाद करती हूं कि

वोट लेने वाले नेताओं से जाकर कहो कि हमारा खून-खून नहीं है, हमारी इज्जत इज्जत नहीं है, तो हमारा वोट ही वोट क्यों है ?" [29]

लवंगी के उक्त पुण्य-प्रकोप में स्वाधीनता उपरांत का दृष्टि - परिवर्तन भलीभांति उद्घाटित हुआ है । (दलित जातियों में यह जो चेतना आयी है उसका एक उदाहरण शैलेश मटियानी इस "घुघुलिया त्यौहार" नामक कहानी में मिलता है, जो उक्त प्रसंग से तुलनीय है । कल्याण सिंह ने अपनी भतीजा बहू लक्ष्मी ठकुरानी की जमींन को हथिया लिया था । लक्ष्मी ठकुरानी के मामले को लेकर पंचायत बैठनेवाली थी । उसके लिए पांच पंचो में देवराम को भी चुन लिया गया था । देवराम ठाकुर कल्याण सिंह का हलिया था । पंचायत वाले दिन ठाकुर की ओर से बुलावा आता है तब देवराम की पत्नी जसुली देवराम से कहती है कि थोपदार जी की ओर से कई बार पुकार हो चुकी है तुम जाते क्यों नहीं हो तब देवराम जसुली से कहता है--" थोपदार जु पुकार रहे , तो क्या मैं जरा चैन से बैठ-कर एक दम तमाखू की भी न लगाऊं ? चाकरी बेगारी करते करते तो ससुरी कई पुश्त खतम हो गयी, मगर सुख और इज्जत का एक दिन भी नहीं देखा हम लोगों ने... बहुत ज्यादा दब के रहना ठीक नहीं । दबकर रहने वाले पेड़-पौधे भी कभी ठीक से नहीं पनपते, पधानी । हम तो आखिर इन्सान हुए... देख एक बात का ध्यान और रखा कर चेतराम ॅदेवराम का लड़काॅ के सामने ही डरपोकपना कभी मत दिखाया करना । उठती उमर हुई उसकी , अभी से दबकर चलना सीखेगा, तो फिर कभी भी अपने आप बबराम और बूबू उदेराम से आगे नहीं बढ़ पाएगा । आज कल्याण सिंह थोकदार मुझे डाँटता -फटकारता है, कल को कल्याण सिंह के बेटे चेतराम को घुरकी दिखाएंगे ।" [30])

अन्यत्र एक स्थान पर लवंगी हरिजनों के नेता जग्गू को कहती है--" यह देखो जग्गू नेता, तुम्हें याद है कि जब मुझे दलसिंगार बाबा ने पकड़कर बेइज्जत करना चाहा था तो ये फरियाद लेकर कहां-कहां नहीं रोई

लेकिन सबने मजाक करके टाल दिया था और तुमने भी कहा था कि जाने दो, बाबा लोगों से कौन मुंह लगे ? दीन दयाल बाबा से पूछिए कितनी बार काम करते समय मेरी बांह पकड़ कर घसीटा है इन्होंने और मैं भीतर - भीतर रो कर चुप हो गयी हूं, यह जानकर कि मेरी कोई नहीं सुनेगा और और तो और पारबती बहन के बाबू जी उस बार जब होली में आये थे तो गली में मुझे पकड़ कर रंग लगाने के बहाने खूब बेइज्जत करना चाहा था और जब फरियाद की थी तो लोगों ने मजाक में उडा दिया था जैसे चमारों की बहू-बेटियां इसी लिए ही होती हैं । और ये जग्गू नेता हैं जो कल तक चिल्लाते थे कि नया जमाना आ रहा है , नयी जिंदगी आ रही है ।" [31]

लवंगी का यह कथन हरिजनों का जो यौन-शोषण और राजनीतिक शोषण हो रहा है उसका यथार्थ चित्र प्रस्तुत करता है । लगता है हमारे नेताओं ने वोट की राजनीति चला रखी है । चुनाव के समय हरिजनों का वोट बटोरने के लिए नेता लोग उनके पास जाते हैं परन्तु बाद में उनको भुला दिया जाता है । इस वर्ग के प्रति जो अमानवीय अत्याचार हो रहे हैं उसमें कहीं किसी प्रकार की कोई कमी नहीं आयी है ।

प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने यह भी प्रतिपादित किया है कि मानवता और सहृदयता के भाव अभी भी दलित वर्ग में विद्यमान हैं । सवर्ण कहे जाने वाले लोग तो इन मानव मूल्यों को मानों घोलकर ही पी गये हैं । प्रस्तुत उपन्यास में इस सत्य को उद्घाटित करते हुए स्वयं लेखक ने अपनी तरफ से एक टिप्पणी दी है —" यह ब्राह्मणं खून है , वह स्वयं एक हरिजन युवक को अपनी काम पिपासा के लिए उत्तेजित कर सारा दोष उसी पर थोप कर नकली ढंग से सिसक रही है और दूसरी ओर हरिजन खून है, हंसिया जो भरी सभा में लात खा रहा है , कुछ भी नहीं बोल रहा है और लवंगी एक खरी लंपट की तरह ब्राह्मणों के तमाम चेहरों पर उड़ती हुई उन पर लिखी अस्पष्ट लकीरों को उभारती गरज रही हैं ।" [32]

उक्त प्रसंगों के अलावा जल टूटता हुआ में बदमी नामक एक

दलित नारी की कथा-व्यथा को भी मार्मिक ढंग से चित्रित किया गया है। जब बाढ़ आती है तब बदमी उसमें बहने लगती है। दलित जाति की होने के कारण कोई उसे बचाने नहीं आता। लोगों को अपने-अपने जानवरों की चिंता है पर बदमी की ओर कोई ध्यान नहीं देता, तब कुंजु तिवारी अपने प्राण संकट में डालकर बदमी को बचा लेता है। कुंजु ब्राह्मण है परन्तु उसमें वह जातिगत संकीर्णता नहीं है। वह मानव-मानव में कोई भेदभाव नहीं करता। अतः बदमी उसे प्यार करने लगती है। यहां लेखक ने बदमी के विगत जीवन का वर्णन भी विस्तार से किया है। बदमी का छोटी उम्र में विवाह हो गया था। कच्ची उम्र में ही उसका शराबी और विलासी पति उस पर तरह-तरह के अत्याचार करता था। अपनी इन्हीं आदतों के कारण बदमी के पति को जेल भी हो जाती है। उन दिनों में कई पुरूषों द्वारा उसका यौन-शोषण भी होता है। स्वयं उसका पति बदमी को वेश्या-वृत्ति के लिए विवश करता है। परन्तु अन्त में कुंजु बदमी को अंगीकृत कर लेता है। कुंजु सवर्ण है जबकि बदमी दलित, किन्तु दोनों का प्रेमसम्बन्ध अनैतिक सम्बन्ध न रहकर शुद्ध प्रेम की सीमा को छूता हुआ दृष्टिगोचर होता है, कुंजु भरी सभा में सबके बीच साहस पूर्वक स्वीकार करता है कि बदमी के पेट में जो बालक है वह उसका है।

प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने एक नये समाज को उठते हुए भी दिखाया है। एक तरफ पुराने मूल्यों के टूटने का दुःख-दर्द है, तो दूसरी तरफ दलित समाज के उत्थान को लेकर, उनकी चेतना को लेकर, एक नया आशावाद भी है। यथा —— "गांव टूट रहा है, मूल्य टूट रहे हैं, सत्य टूट रहा है, कोई किसी का नहीं, सब अकेले हैं, एक-दूसरे के तमाशाई, वही क्यों सबका ठेका लिए फिरे... गांव टूट रहा है। मगर वहीं एक नया गांव बन भी रहा है, वह है किसानों - मजदूरों का। जगपतिया का खेत नहीं कटवा सके महीपति सिंह। वह अकेला नहीं था, उसके साथ अनेकों हाथ उठ गये थे मरने मारने को तैयार।" [33]

इस प्रकार जल टूटता हुआ एक महत्वपूर्ण उपन्यास है । जिसमें दलित जीवन के प्रश्नों से साक्षात्कार करने की क्षमता है । यह उपन्यास स्वातंत्र्योत्तर कालीन दलित चेतना को भी रेखांकित करता है ।

§9§ सूखता हुआ तालाब :---

डॉ० रामदरश मिश्र के इस उपन्यास में भी अनेक विरोधी परिमानों को आमने-सामने रखकर लेखक ने दलित जीवन की विडम्बनाओं को प्रस्तुत किया है । शिवलाल, दयाल तथा मास्टर धर्मेन्द्र जैसे लोग एक तरफ अपनी हलवाहिनों तथा चमारिनों से शारीरिक संबंध रखते हैं और दूसरी तरफ छुआछूत का दंभ भी पाले हुए हैं । उपन्यास में एक प्रसंग में निरूपित है । पूरपती का बेटा मूरतिया नाद भरने के लिए कुंए पर चढ़ जाता है । अपनी धुन में उसने देखा नहीं कि वहां शिवलाल का बेटा रामलाल भी पानी भर रहा है । मूरतिया के घडे का कोई छींटा रामलाल के घडे पर गिर जाता है । इस पर रामलाल न आव देखता है न ताव और मूरतिया को कई झापट रसीद कर देता है । मूरतिया रोता हुआ अपने मालिक मोतीलाल के पास जाता है । मोतीलाल स्वयं को कॉमरेड और हरिजनों का नेता समझते थे । जिस समय मुरतिया उनके पास गया था उस समय भी वे शहर में हरिजनों की एक सभा में गये थे । मोतीलाल एक तरफ अपने कॉमरेड होने का और हरिजनों के नेता होने का दंभ पाल रहे हैं, परन्तु अपने नौकर के लिए वे शिवलाल से शत्रुता करने में बुद्धिमानी नहीं समझते और उक्त प्रसंग में चुप्पी साध जाते हैं । यही कॉमरेड मोतीलाल अपने छोटे भाई की विधवा पत्नी से अवैध संबंध भी रखते हैं और कॉमरेड होते हुए अपने पुत्र का मूर-पूजन भी करवाते हैं ।

मोतीलाल के न मिलने पर मुरतिया रोता हुआ अपने घर जाता है तब उसकी मां गुस्से में आकर कहती है ---" बड़े पतिहा बने फिरते हो, बाप से नहीं पूछते कि कोई हरवाहिन बची हुई नहीं है जिससे मुंह न

मारा हो ।"[34] मू रतिया के घर के पास ही शिवलाल के हलवाहे पतराम का घर भी था । अतः : पतराम की औरत यह समझती है कि मू मूरतिया की मां यह चोट उस पर कर रही है । फलतः दोनों में खूब गाली-गलौज होता है । तब मुरतिया की मां चिल्ला चिल्ला कर कहती है--" हां हां ठीक कहती हूं । बियाहल (ब्याही हुई) जवान बेटे को तू क्यों रखे हुए है ? उसका और शिवलाल बाबा का खेल कौन नहीं जानता ?"[35]

मुरतिया की मां का उक्त कथन चेनइया को लेकर है । गांव में लीलावती और कलावती जैसी सवर्ण कन्याएं हैं, जो अविवाहित हैं और अवैध सम्बन्धों के कारण अपने गर्भ गिरवा देती हैं । मोतीलाल की भयहू को भी मोतीलाल से गर्भ रहता है । वह भी उसे गिरा देती है । दूसरी तरफ चमार कन्या चेनइया है जो शिवलाल से गर्भ रहने पर न तो गर्भपात करवाना चाहती है न उसके पिता का नाम बताना चाहती है । चेनइया एक स्थान पर देव प्रकाश से कहती है--" बाबा, गांव सचमुच रहने लायक नहीं है, मैं गांव से भाग रही हूं । गांव में मुझे वेश्या बना कर छोड़ दिया है, अब जान लेने पर उतारू है ।"[36]

समूचे उपन्यास में एक देव प्रकाश का पात्र ऐसा है जिसमें हमें सत्य, न्याय और विवेक के दर्शन होते हैं । उनमें अभी अच्छे जीवन-मूल्यों के प्रति लगाव शेष है । चेनइया की बात पर वे सोचते हैं कि ब्राह्मणों की तथाकथित साध्वी लड़कियों से बढ़कर तो यह छिनाल समझी जाने वाली हरिजन बालिका लाख गुना अच्छी है जो न गर्भ गिरवाती है न उसके नाजायज बाप का नाम देती है ।

चेनइया के साथ जिन्होंने ने अवैध सम्बन्ध रखे वे लोग चाहते हैं कि चेनइया बच्चे को गिरा दे । चेनइया देव प्रकाश से कहती है --"दयाल बाबू रोज हमें धमकी देते रहे कि शाली नाम बताया तो थाने में बंद करवा कर तेरी ऐसी तैसी करवा दूंगा और पेट में जो झोरी लटकाये घूम रही है उसे भी खत्म कर नहीं तो तुझे भी खत्म करवा दिया जाएगा ।"[37]

चेनैया का पति कलकत्ते में नौकरी करता है । वह चेनैया की मां को कई चिट्ठियां लिखता है, परन्तु चेनैया की मां उसकी बिदाई नहीं करवाती थी । यहां दलित जीवन से जुड़ा हुआ यह आयाम स्पष्ट होता है कि इस वर्ग का जो यौन-शोषण हो रहा है उसके पीछे उनकी दरिद्रता भी कारणभूत है । रेणु के "मैला आंचल " उपन्यास में भी इसके उदाहरण मिलते हैं । चेनैया का पति पत्र लिखते-लिखते जब थक जाता है तब स्वयं उसे लेने आ धमकता है । चेनैया का यह दुर्भाग्य रहा कि उसका पति उसे जब लिवाने आता है उस समय वह किसी दूसरे का गर्भ ढो रही थी । पास - पडोस की औरतें खुब लगाती-बुझाती हैं, फलतः वह गुस्से में आकर गाली - गलौज पर उतर आता है । वह अपनी जाति वालों की पंचायत बुलाता है और चेनैया को जाति से बहिस्कृत किया जाता है । यहां भी स्त्री ही दंडित होती है । उसके साथ गलत व्यवहार करने वाले बड़े साफ-सफ्फा होकर घूम रहे हैं । उनको पूछने वाला कोई नहीं है ।

इस प्रकार चारों तरफ से लांछित और प्रताडित होने पर भी चेनैया दूसरे गांव चली जाती है । चेनैया का यह साहस एक-दूसरे प्रकार की नैतिकता और ईमानदारी को उद्घोषित करने वाला है ।

उपन्यास में लेखक ने तथा-कथित उच्च जाति के दंभ और धार्मिक ढकोसलों को भी रेखांकित किया है । डॉ० पारूकान्त देसाई ने इस उपन्यास की आलोचना करते हुए कहा है कि--" अनेक विरोधी परिमाणों का आमने-सामने उपस्थित कर लेखक ने मार्मिक व्यंग्य की सृष्टि की है । लीला तथा कलावती जैसी ब्राह्मण कन्याओं के आचरण के विपरीत चेनैया जैसी चमार कन्या का गर्भ न गिरा कर समाज को चुनौती देने का साहस करना, कॉमरेड मोतीलाल की समझौता परस्त सिद्धान्तवादिता, एम. ए. में पढ़ने वाले बाबू पारसनाथ का ओझा-सोखा आदि में विश्वास व्यक्त करना, चमारिनों से शारीरिक सम्बन्ध रखते हुए मास्टर धर्मेन्द्र का छुआछूत सम्बन्धी दंभ, विष्णु पुराण की कथा के उपरान्त फिल्मी गीतों को भजन के रूप में गाना, आंटा-

चक्की की आवाज के साथ ही जलेसर के यहां से ओझा की डुगडुगी की आवाज का आना, भूत-प्रेत जैसे अन्य मान्यताओं का भी राजनीति में उपयोग करना आदि घटनाएं इसके उदाहरण हैं ।" 38

देव प्रकाश का भाई अवतार पडोशी गांव की पासिन के साथ पकड़ा जाता है । अपने भाई अवतार के इस कृत्य से देवप्रकाश बहुत दुःखी रहते हैं तब एक दलित वर्ग का पात्र उनसे कहता है --" भैया, एक बात पूछू, बुरा न मानिएगा । अवतार भइया ठहरे विधुर । सुना है वे पत्नी के मरने के बाद फिर शादी करना चाहते थे, आपने रोक दिया यदि अपनी सहज वासना तृप्ति के लिए उन्होंने पासिन से सम्बन्ध रखा तो इसमें कौन-सा पहाड टूट पड़ा । इसमें कौन-सी सात पुश्त डूब गई । नैतिकता के ठेकेदार इन पट्टीदारों से पूछिए कि छिप-छिप कर कौन-कौन क्या -क्या करता है ?" 39

इस प्रकार प्रस्तुत उपन्यास में जहां लेखक ने एक ओर दलित जातियों पर हो रहे अत्याचार और अन्याय तथा उनके यौन-शोषण को गहरी संवेदना के साथ उकेरा है, वहा दूसरी ओर तथाकथित ऊँची जाति के लोगों की खोखली नैतिकता और झूठे दंभ का पर्दाफास किया है । ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेता मलयाली लेखक अनंतमूर्ति के उपन्यास संस्कार की चन्द्रिका का स्मरण यहां सहज हो जाता है । वह पूरे गांव के उतार ऐसे की रखैल है कई पुरूषों की अंकशायिनी रह चुकी है परन्तु अपने स्वामी की मृत्यु पर (जिसकी वह रखैल थी) जब गांव का पंडित समाज उसके अग्नि संस्कार के लिए तैयार नहीं होता तब वह अपने तमाम गहने उनके चरणों में रख देती है, जो लोग पहले अग्नि संस्कार करने को मना कर रहे थे वे अब उसके लिए पूरी तत्परता दिखाते हैं । चन्द्रिका तो रखैल थी । वह वहां से सारी जमा-पूंजी समेट कर खिसक जाती तो कोई उसे पूंछने वाला नहीं था । परन्तु चंद्री ऐसा नहीं करती तब उसके इस व्यवहार से वह उस समूचे ब्राह्मण समाज से एक बालिस्त ऊपर उठ जाती है । सितार पुर गांव के ब्राह्मण कन्याओं के सामने चेनैया का व्यवहार भी अनंतमूर्ति की चंन्द्री की याद दिलावे ऐसा है ।

§10§ सागर लहरे और मनुष्य :---

यह उदय शंकर भट्ट जी का एक आंचलिक उपन्यास है, जिसमें लेखक ने बम्बई के समीपवर्ती सागर तट पर स्थित बरसोवा नामक बस्ती के मछुवारों के जीवन को उसकी समग्रता के साथ प्रस्तुत किया है । हिन्दी साहित्य में भट्ट जी की ख्याति यद्यपि एक कवि और नाटककार के रूप में है, तथापि उनके प्रस्तुत उपन्यास को अपने अछूते विषय-वस्तु के कारण पर्याप्त ख्याति मिली है । भट्ट जी ने यहां उपन्यास विधा के अनुरूप यथार्थवादी दृष्टिकोण को अंगीकृत किया है ।

उपन्यास की भूमिका में लेखक बतातें हैं कि "इस जाति को §मछुवारों की जाति को§ कोली कहा जाता है ।" [40] प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने इस कोली जाति की गरीबी, अशिक्षा और उनके शोषण का जीवंत चित्र अंकित किया है । सामान्यतया कोलियों का जीवन भयंकर दारिद्रयपूर्ण दृष्टिगत होता है । उनकी इस दरिद्रता का चित्रण उपन्यास में एक स्थान पर इस प्रकार उकेरा गयाक है । --" इट्ठा के घर चार दिन ि दया जलाने के लिए केरोसीन नहीं था । उसकी मां तीन दिन से भूंखी थी । इट्ठा की इच्छा चिउडा खाने की हुई तो जागला कहता है , चिउडा क्या हम लोग कुं खाने की चीज है ? अमीर आदमी खाता है चिउडा भजिया ।" [41]

रत्ना इस उपन्यास की नायिका है जो इस बरसोवा बस्ती में पैदा होती है, पलकर बड़ी होती है । बम्बई के समीप होने के कारण वह नगरीय जीवन की ओर आकर्षित होती है । नगरीय बब जीवन की चकाचौंध उसे अपनी तरफ खींचती है । अतः बम्बई जाकर वह नर्स बनने में कामियाब होती है और ब नर्स बनने के उपरांत एक डॉक्टर के हृदय को जीतने में भी सफल होती है ।

आंचलिक उपन्यास होने के कारण प्रस्तुत उपन्यास में कई सारे पात्र दृष्टिगोचर होते हैं । रत्ना इस उपन्यास की नायिका है । अन्य

महत्त्वपूर्ण पात्रों में रत्ना की मां वंशी, उसका बाप विट्ठल, उसका पति मानिक, रत्ना से प्रेम करने वाला यशवंत, वंशी का नौकर एक प्रेमी जागला आदि का समावेश होता है। उपन्यास के अन्य पात्रों में यशवंत का बाप, नाना मांहिरा, गुण्डा बरलीकर, बाढ़ला, बाउला की पत्नी सीमा, पारसी वकीली धीरूवाला, नौकर रामू, रंगनाथ, जागला की पत्नी इट्ठा, इट्ठा की मां गुत्थी, पार्वती, रत्ना की सहेली सारिका, डॉ० पांडुरंग, नर्स सुनयना, मानिक की प्रथम पत्नी दुर्गा, दुर्गा की मां गूंगी, दुर्गा का बाप मांगा, मानिक का दोस्त कान्तिलाल , आदि को लिया छ जा सकता है ।

इस उपन्यास में दलित जीवन का एक नया पक्ष उद्घाटित होता है कि कोली की जाति में पुरूषों पर स्त्रियों का वर्चस्व पाया जाता है। विवाह के समय लड़की के बजाय लड़केवालों को ही लड़की के लिए पैसे देना पड़ता है। फलतः लड़केवालों को लड़की वालों की खूब खुशामत करनी पड़ती है और उन्हें हर तरह से प्रसन्न रखने की चेष्ठा की जाती है। सवर्ण समाज में जहां लड़के वालों का हाथ ऊपर रहता है, यहां उसका विलोमी समीकरण मिलता है। आर्थिक लेन-देन तथा संचालन भी स्त्रियों के हाथ में रहता है। इस प्रकार यदि देखा जाय तो सच्चे अर्थों में स्त्री को यहां लक्ष्मी माना जाता है। वैवाहिक सम्बन्धों में पैसों की लेन-देन कोई स्वस्थ परंपरा नहीं है, परन्तु यदि तुलनात्मक दृष्टि से विचार किया जाय तो उक्त प्रथा को सवर्ण समाज की प्रथा से बेहतर ही समझा जाएगा, क्योंकि इसके कारण स्त्रियों का शोषण और दमन नहीं होगा। दूसरे आर्थिक व्यवस्था के कारण कोई भी लड़की यहां अविवाहित नहीं रह जाती और लड़की के मां-बाप का हाथ भी हमेशा ऊपर रहता है। अनेक दलित जातियों में यह परम्परा दृष्टिगोचर होती है जो श्लाघनीय है। परन्तु इधर सवर्णों की देखादेखी दलित जाति के शिक्षित युवक दहेज की मांग करने लगे हैं। यह उपयुक्त नहीं है। इससे दलित समाज की एक स्वस्थ परम्परा समाप्त हो जाएगी।

इस उपन्यास में उदय शंकर भट्ट ने बरसोवा बस्ती के मछुवारों की गरीबी, अशिक्षा और इन दोनों के कारण उनके लगातार हो रहे शोषण को सजीव ढंग से प्रस्तुत किया है । मछुवारों में यौन-संबंधों को लेकर एक प्रकार की स्वच्छंदता और स्वतंत्रता दृष्टिगत होती है । परन्तु यह स्वच्छंदता पाश्चात्य प्रकार की नहीं है । वैभव और विलासिता के अतिरेक से जन्मी हुई स्वच्छंदता नहीं है । परन्तु यह स्वच्छंदता एक प्रकार से उनके जीवन की विवशता है । बस्ती के पुरूष मछली पकड़ते हैं । परन्तु उतने मात्र से उनका पेट नहीं भरता । उसके लिए उनकी स्त्रियों को अस्मत का सौदा करना पड़ता है, जिससे अपने तथा बच्चों के लिए दो जून का भोजन जुटाया जा सके । उपन्यास में इट्ठा जैसी अनेक कोली औरतें दृष्टिगत होती हैं जिन्होंने शरीर के इस व्यापार को श्रम की तरह स्वीकार कर लिया है ।

उपन्यास की कुछेक घटनाएं बाम्बे में घटित होतीहुइ हुइ हुइ हैं, परन्तु अधिकांश घटनाएं बरसोवा में घटित होते हुए दिखाया गया है । फलतः उपन्यास के आंचलिक रूपबंध को कोई व्याघात नहीं पहुंचता । उपन्यास में मछलीमार कोली जाति की समग्र सभ्यता और संस्कृति को उसके जीवंत रूप में प्रस्तुत किया गया है तथा उनके सामाजिक, आर्थिक, नैतिक और धार्मिक सरोकारों का एक विशेष दृष्टि से आंकलन किया गया है । जिससे कि उनके जीवन की समग्रता हमारे सामने प्रकट हो । बरसोवा का मूल नाम तो विसावा है जो अन्धेरी से पश्चिम में लगभग तीन-चार मील की दूरी पर है । यहां के समुद्र तट पर जो कोली जाति रहती है उनकी दो उपजातियां हैं -- थलकर और शिवकर । दोनों में रोटी व्यवहार है, बेटी व्यवहार नहीं । गांव में अधिकांश मकान कच्चे और छप्पर वाले हैं । पुरूष प्रायः बनियाइन या कमीज पहने रहते हैं । नीचे घुटनों से ऊपर एक तिकोना रंगीन तोलिया लपेटे रहते हैं । स्त्रियां रंगीन लांगदार साड़ी या धोती पहनती हैं । ऊपर वक्ष के भाग में चोली रहती है । कोली पुरूषों को कभी-कभी कई-कई दिनों तक समुद्र में ही रहना पड़ता है और तब कई

बार कच्ची मछलियों को चबाकर पेट भरना पड़ता है । वे लोग जो मछलियां पकड़ते हैं उनमें बागटा मांडील, खारण, चीरी, सामडी, सांभर आदि कई किस्म की मछलियां होती हैं । पुरूषों का काम है मछलियों को पकड़ना और स्त्रियों का काम है उसे बेचना । मछलियों को पकडने के अतिरिक्त दूसरे सभी व्यवहारिक और सांस्कारिक कार्य स्त्रियों की जिम्मे रहता है । अतः इस प्रगति में स्त्रियों का पुरूषों पर एक विशेष प्रकार का वर्चस्व रहता है । यह अस्वाभाविक नहीं है, क्योंकि प्रायः सभी दलित और श्रमजीवी जातियों में स्त्रियों को बराबरी का दरज्जा मिला हुआ है । इस प्रकार प्रस्तुत उपन्यास के द्वारा हमें बरसोवा स्थित कोली जाति के लोगों के अंतरंग जीवन के कई तथ्य प्राप्त होते हैं ।

प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने धर्म परिवर्तन के आयाम को भी अनाकलित नहीं रहने दिया है । इस जाति की दरिद्रता और अशिक्षा से लाभ उठाते हुए बहुत से ~~पादरी~~ इसाई मिशनरी पादरी इन लोगों को धर्म परिवर्तन के लिए उकसाते और ललचाते रहते हैं । उपन्यास में एक ईसाई पादरी लाखा की बेटी को इसाई बनाने का प्रयत्न करता है परन्तु अन्ततोगत्वा लड़की की मां उसे बचा लेती है । यहां धर्म-परिवर्तन केवल दरिद्रता के कारण ही होता है । उसके पीछे अपमान या जातिगत उपेक्षा का भाव नहीं है जिसे "धरती धन न अपना" जैसे उपन्यासों में रेखांकित किया जा सकता है ।

कोली जाति का मूल व्यवसाय मछली पकड़ना है । अतः कोलियों में नांव का विशेष महत्व होता है । जिसके पास अपनी नाव होती है वह सम्मानीय माना जाता है।। सम्पन्नता का परिमाण भी यहां नावों के हिसाब से देखा जाता है । ज्यादा नावों का मालिक धनिक समझा जाता है । फलतः कोली जाति में नांव को बेचना देवालियेपन का लक्षण माना जाता है ।

कोली समाज में यौन पवित्रता या नैतिकता का कोई महत्व नहीं है । फलतः यहां अधिकांश स्त्री-पुरूषों में अवैध सम्बन्ध पाये जाते

हैं । उपन्यास में एक स्थान पर वर्णन किया गया है —" वंशी के घर आने से पहले विट्ठल ने जवानी में कई खेल खेले थे , कई औरतों से प्रेम किया था । इट्ठा माहिम के एक मछुए के यहां रह चुकी है । रत्ना के घर के नीचे की मंजिल में एक परिवार में एक कुमारी लड़की के गर्भ रह गया था । [42]

इस प्रकार प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने दलित जाति के एक उपेक्षित वर्ग की व्यथा-कथा का आंकलन किया है । रत्ना इस समाज से ऊपर उठती है । परन्तु सभी स्त्रियां तो रत्ना नहीं हो सकती । जिन नारकीय स्थितियों में ये लोग सांस ले रहे हैं उनसे उनका उभरना मुश्किल सा प्रतीत हो रहा है । हिन्दी उपन्यासों में दूसरी दलित जातियों के शोषण को कई उपन्यासों में रेखांकित किया गया है । परन्तु समुद्र तट पर स्थित कोली जाति पर लिखा गया कदाचित यह प्रथम उपन्यास है ।

ऽ।।ऽ नाच्यौं बहुत गोपाल :—

अमृतलाल नागर का लिखा "नाच्यौं बहुत गोपाल" उपन्यास दलित जातियों में भी निम्नतर ऐसी मेहतर ऽभंगीऽ जाति की दयनीय और दीन-हीन स्थिति का करूण चित्र प्रस्तुत करता है । डॉ० विजेन्द्र नारायण सिंह के शब्दों में प्रस्तुत उपन्यास का उद्देश्य है —" भारतीय समाज में सामन्ती दमन को निकृष्टतम् रूपों से साक्षात्कार कराना और उनके प्रति हमारे मन में नफरत और विरोध का तीखा बोध पैदा करना । अपने इस संवेदनात्मक उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने पाखाना धोनेवाले, टोकरी में मैला ढोने वाले, भंगी समुदाय के यथार्थ जीवन का मार्मिक चित्रण किया है ।" [43]

नागर जी ने प्रस्तुत उपन्यास में मेहतर जाति का इतिहास बताते हुए यह सिद्ध किया है कि यह लोग पहले राजपूत जाति के थे । मुसलमानी आक्रमण के समय उन्हें जबरजस्ती मेहतर बनाया गया । ऊंची जाति के क्षत्रिय-महत्तर क्षत्रिय-महत्थर से मेहतर शब्द व्युत्पन्न हुआ है । इस

बात की पुष्टि लेखक ने मेहतर जाति के एक व्यक्ति से ही करवायी है । लेखक जब मेहतरों के मुहल्ले में जाते हैं और उनसे पूछताछ करते हैं तब एक व्यक्ति बताता है--" बाबू जी हमारे एक बुजुर्ग ने हमें बतलाया था कि हम लोग भी कोई सदा के मेहतर नहीं थे । गोरी, गजनी के बादशा से लड़ाई में हम हार गये । वह हमें पकड़ कर ले गया हमारी औरतें हमसे छीन ली । उनका धरम बदल दिया , हमसे भी कहा कि अपना दीन-धरम छोड़कर हमारे मजहब में आ जाओ । हमने कहा कि हम अपना धरम हरगिज-हरगिज नहीं छोड़ेंगे तो तुम्हें हमारा मल-मूत्र उठाना पड़ेगा । हमने यह काम मंजूर किया पर अपना धर्म नहीं छोड़ा ।" [44] इस सन्दर्भ में अन्यत्र लेखक अमृतलाल नागर लिखते हैं —" मेहतर कोई जाति नहीं । विजेता ने विजितों को दास बनाकर उनसे जबरदस्ती मलमूत्र उठवाना आरम्भ किया ।... भंगी समाज में बहुत से छोटे-छोटे पराजित राजकुलों के वंशधर भी मौजूद हैं । विजेता ने विजितों के दंभ को कुचल कर किस मानसिक गति में नाली में कीडे की तरह बहा दिया है ।" [45]

वस्तुतः यह कुछ इतिहासकारों की चातुर्यपूर्ण युक्ति है, जिससे कि मेहतर जाति के लोग मुसलमानों से घृणा करें । अपना दोष दूसरे पर डालने की यह एक प्रयुक्ति है कि हमने तुम्हें मेहतर नहीं बनाया । मुसलमानों ने बनाया । वस्तुतः मुसलमानी आक्रमण के समय जबरदस्ती धर्म परिवर्तन तो उच्चवर्गीय लोगों का हुआ होगा । निम्न जाति के लोगों ने धर्मपरिवर्तन एक बेहतर विकल्प के रूप में किया । भारतीय समाज में मुसलमानों के आने से पहले भी शूद्र जाति थी शूद्रों से निसृत अनेक दलित जातियाँ भी थी और उन पर अनेक प्रकार की निर्योग्यताएं थोपी गई थी । उन्हें गन्दे घिनौने काम करने पड़ते थे । अतः इन सबसे नजात पाने के लिए मुसलमानी आक्रमण के समय इन लोगों ने स्वखुशी से धर्मपरिवर्तन किया । एक प्रशिष्ट लेखक हमारे इतिहास दृष्टि को कैसे परिवर्तित कर देता है, उसका यह एक उदाहरण है ।

इस उपन्यास के केन्द्र में है उसकी नायिका निगुणिया । उसका

मूल नाम तो निर्गुण है, परन्तु मोहना नाम का एक मेहतर युवक के साथ वह भाग जाती है और इस प्रकार निर्गुण से निर्गुण से निर्गुणिया हो जाती है। परिस्थितियों की शिकार है। उसकी मां पैसों के लिए अल्प अवस्था में ही उसे वासना के दल-दल में ढकेल देती है। छोटी उम्र में ही उसे अनेक लोगों की वासना का शिकार होना पड़ता है। पैसे के लिए ही उसकी सौतेली मां अन्ततः उसकी शादी मसुरिया दीन ॼ से करवा देती है। मसुरिया दीन बुढ़ा और संकालू है। वह निगुण के यौवन को छलकर भोगने के लिए उससे विवाह तो कर लेता है परन्तु निर्गुणं की दैहिक लिप्सा को तृप्त करने की शक्ति उसमें नहीं है। फलतः यौन क्षुधा की मारी निर्गुणं निरंतर काम ज्वर में तप्त रहती है। इस पर बूढ़ा मासुरिया दीन उसको ताले में बन्द कर देता है। निर्गुण यौन जीवन का आनंद कई बार ले चुकी है, अतः बूढ़े मसुरिया दीन से अतृप्त रहना बिल्कुल स्वाभाविक कहा जाएगा। ऐसे में ॼ मसुरिया दीन का व्यवहार यदि सहज और मानवतापूर्ण होता, तो कदाचित निर्गुण अपने जीवन से नियति से समझौता कर लेती। परन्तु उसका व्यवहार तो एकदम अमानवीय रहता है। परिणाम स्वरूप निर्गुण में काम की ज्वाला और भड़क उठती है। मसूरिया दीन उसे हवेली में बंद कर देता है। मनुष्य के नाम पर केवल मेहतरानी के दर्शन होते हैं जो दिन में एक बार मेहतरानी कुछ दिनों के लिए छुट्टी पर जाती है। तब उसके बेटा मोहना उसके स्थान पर सफाई के लिए आने लगता है। निर्गुणं को मोहना के रूप में अपनी काम तृप्ति का एक मार्ग दिखने लगता है वह अपने मोहपाश में उसे फंसाती है और उसके साथ शारीरिक संबंध स्थापित करती है। मोहना के प्रेम में अन्धी होकर निर्गुण उसके साथ भाग जाती है और ब्राह्मणी से मेहतरानी बन जाती है। अपनी वासना पूर्ति के लिए वह मेहतरानी तो बनती है, परन्तु एकदम मेहतरानी नहीं बन पाती। अनेक शारीरिक और मानसिक यंत्रणाओं के बाद थक-हार कर, टूट कर वह मेहतरानी बनती है। इस प्रकार लेखक ने निर्गुण्या के माध्यम से इस समाज की सड़ी-गली दलित

दयनीय स्थिति को उसके यथार्थ रूप में उकेरने का प्रयास किया है ।

उपन्यास में निर्गुण्या के जीवन की विभिन्न छोटी-बड़ी घटनाओं को प्रस्तुत किया गया है और उसके माध्यम से मेहतर समाज के अतीत और वर्तमान को भी समाकलित किया गया है । उपन्यास की नायिका निगुण्या का जन्म एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था । उसके पिता एक ब्राह्मण महाजन पंडित बटुक प्रसाद के मुन्शी थे । शैशव अवस्था में ही मातृविहीन हो जाने के कारण उसका बाल्य-जीवन नाना-नानी के यहां व्यतीत हुआ । नाना-नानी के मृत्यु के पश्चात, उसके पिता ने उसे अपने मालिक पंडित बटुक प्रसाद के हाथों सुपुर्द कर दिया । परिवेशगत उच्छृंखलता के कारण निगुण्या पथभ्रष्ट होकर खराब रास्ते पर पड़ गयी । उसका अनेक लोगों से यौन-सम्बन्ध स्थापित हुआ । बबुआ सरकार, खड्ग बहादुर, मसुरिया दीन आदि उसके प्रेमी थे । अन्ततः उसका विवाह बृद्ध मसुरिया दीन से करवा दिया जाता है । परन्तु मसुरिया दीन अब बूढ़ा हो चुका है और निगुण्या की वासना परिस्थितियों में पड़कर विपुल और स्फोटक हो चुकी है । अतः अपनी यौन संतृप्ति के लिए वह मोहना के साथ भाग जाती है । जिसका जिक्र पूर्ववर्ती पृष्ठों में कर दिया गया है । मोहना को भी अपने मेहतर होने का वैसा ही गर्व है जैसा कि किसी ब्राह्मण को अपने ब्राह्मण होने का होता है । मोहना यद्यपि मेहतर का कार्य नहीं करता किन्तु वह निगुण्या को पूरी मेहतरानी बनाने की ठान लेता है और उसे मेहतरानी बनाकर मोहना स्वयं डाकू बन जाता है । निणगुण्या को समाज के साथ दोहरा संघर्ष करना पड़ता है -- एक तो मेहतरानी के रूप में और दूसरे डाकू की पत्नी के रूप में । डाकू की पत्नी होने के कारण उसे समाज के लोगों से कुछ सुविधाएं भी प्राप्त हो जाती हैं । मोहना के आतंक के कारण कोई उसे परेशान करने का साहस नहीं जुटा पाता । शरीर की भूख, जिसके कारण निणगुण्या ब्राह्मण से मेहतरानी हुई थी, उस पर अन्ततः वह काबु पा लेती है जिसमें एक फकीर बाबा उसे सहायता करते हैं ।

उपन्यास में मोहना के साथ भागने के उपरान्त निर्गुण्या की जो

हालत होती है उसका यथार्थ वर्णन लेखक ने किया है । सर्वप्रथम मोहना की मां उसे तिरस्कृत करती है —" इसे कहीं अलग ले जाकर रखो । मेरे घर में रण्डियों के लिए जगह नहीं है । आज ब्राह्मण छोड़ मेहतर पकडा है, कल तुम्हें छोड़कर किसी ओर की खाट में भाग जाएगी । इसका बूढ़ा पुलिस में रपट कर दें तो सबसे पहले हमारे पर ही सरवस सुभा जाएगा । एक छिनाल के पीछे हम शरीफ आदमियों की इज्जत क्यों जाए ? तुम तो अपने मामू के यहां रहते हो, यहां तुम्हारे और तीन भाई-बहन रहते हैं, मैं उनके और अपने जौटे पुलिस से नचवाने के लिए तैयार नहीं हूं ।" [46]

आगे उसकी मां मोहना को समझाते हुए उसे कहती है—" गले से यह फांसी का फंदा निकालकर फेंक दो । पचासों दलाल फिरते हैं । उनके यहां किसी रण्डी के हाथ पांच-सात सौ रूपये में बेच डाल ।" [47]

पर उसके लिए मोहना राजी नहीं होता निर्गुण उसके जीवन में आने वाली पहली स्त्री थी और वह भी उच्च कुल की । उसने ही उसे पुरूष बनाया । परन्तु मोहना न उसे छोड़ना चाहता है न अपनी बिरादरी को, क्योंकि वह जानता है कि कभी भेद खुल गया तो उंची जाति वालों के जूते पड़ेंगे, अपनी बिरादरी में रहेगा तो इज्जत से रहेगा । अतः मां के मना करने पर मोहना उसे अपने मामा के यहां ले जाता है, जहां वह स्वयं रहता था । मामी भी पहले तो खूब भला-बुरा कहती है और निर्गुण को रखने से साफ इन्कार कर देती है परन्तु मोहना जब क्रिश्चियन होने की धौंस देता है तब वह कुछ नरम पड़ती है परन्तु निर्गुण्या के प्रति उसका व्यवहार वितृष्णापूर्ण ही रहता है । वह जब तब निर्गुण्या को जली-कटी अश्लील, गंदी, गालिया सुनाती रहती है , यथा --- " मेरे लड़के को फंसाने से पहले तूने कितने खसम और किये बोल !... तुझे मेरी ही इज्जत पर डाका डालने की सूझी थी, रण्डी, छिनाल कहीं की । तेरी जवानी में आग लग जाए । कलमुंही लेके भी आयी तो चार-पांच सौ रूपल्ली... जा चिलम भर के ला । तेरे ... में कोड़े पड़े । मेरे रोए-रोए को बिच्छू काटे । मेरी सात पीढ़ियां नरक में पड़े । तेरी मां , तेरी दादी..।"[48]

इतना ही नहीं निर्गुण्या की ममिया सास निर्गुण्या से पैर दबवाती है, ब्राह्मण होने के कारण वह काम जो नहीं कर सकती जबरदस्ती करवाती है और ऊपर से लात और घूंसों से बातें करती है। एक बार अपने काम पर जाते हुए माई निर्गुण्या से कहती है -- " खाना-वाना सब पकाके रखना, तुम्हारे मामू जल्दी खाते हैंगे। और मेरा मोहन भी नौकरी पर जल्दी ही जाता है। और सुन, कल सांझ भेलुआ के यहां सुअर मारा गया था रसोइयां में बायें हाथ छींके पर रखा है, समझी। अच्छी तरह से पकाना। और मामू तुम्हारे भगत हऐं हैंगे कहीं उनके आगे मत परोसना। रोटियां और आलू का सूरबा बना लेना।" 49

माई के ऐसे शारीरिक, मानसिक त्रास से निर्गुण्या ऊब जाती है। और एक बार मोहना से उनको समझा देने के लिए कहती है। और साथ ही उसके मुंह से आत्महत्या करने की धमकी भी निकल जाती है। इस पर मोहना बुरह से बिगडते हुए कहता है --" मैं तुम्हें कागज पेन्सिल देता हूं। तुम्हें यह लिखकर देना होगा कि मैं अपनी मरजी से फांसी लगा रही हूं इसमें किसी का कसूर नहीं है।" 50

निर्गुण्या जब लिखने में देर करती है तब उसे बुरी तरह से डॉटते फटकारते हुए मोहना कहता है --" नहीं, फांसी तो तुम्हें आज ही लगानी पड़ेगी। तुम क्या लगाओगी, मैं अपने हाथ से तुम्हारे गले में फांसी का फंदा डालूंगा, लेकिन चूंकि खुद फांसी पर चढ़ना नहीं चाहता इसलिए तुमसे यह बयान जरूर लिखवाऊंगा। लिख साली।" 51

निर्गुण फूट-फूट कर रोने लगती है, मोहना उसे खूब मारता - पीटता है और जबरदस्ती कागज पर लिखवाता है। उसके बाद खटिया पर चढ़कर धन्नी में उसकी साडी का फंदा बांधकर लटकाते हुए कहता है-- "आखिरी बार तेरा सुख भोगूंगा और अपने ही हाथों से तुझे फांसी पर चढ़ा दूंगा।" 52

खैर, उसी दिन फांसी तो नहीं लगी पर रात भर मोहना निर्गुण्या को मारता-पीटता और सताता रहा। उस अपमानभरी घिनौनी

रात के बाद वह घिनौना दिन भी आ गया जब माई उसे जबरदस्ती भंगिन बनाने का प्रयत्न करती है । निर्गुण्या इस घटना का वर्णन इस प्रकार करती है ---" जब मोहना और मामु चले गये तब माई घर में ही टट्टी गई और मुझसे कहा 'इसे उठाकर नाली में फेंक आ' मैंने कहा --"यह मुझसे न होगा " उस दिन मुझपे कैसी-कैसी मारे पडी है । कलम से क्या लिखूं । माई नें रात में हम दोनों की बातें सुन ली थी और सवेरे उसका ही उन्होंने जो दण्ड दिया वह तब तक मैंने कहावत में सुना ही था - "मार मार के भंगी बनाया जाता है ।" मैं सचमुच ही मार मार कर भंगिन बनायी गई थी ।" [53]

दूसरे दिन भी वही क्रम चलता है । "उस दिन सवेरे उठी वह हरामजादी और जब मरद चले गये तो कुण्डा बंद किया । आप सामने ही निर्लज्जता से मोरी पर हगने बैठ गयी हरामजादी । फिर झाडू पंजे की ओर इशारा करके मुझसे कहा -"इसे कमा, टोकरे में डाल ।" मेरा शिर चकरा गया ।" [54]

निर्गुण्या चुपचाप खडी रहती है तब माई उसका झोंटा खींचते हुए कहती है , बहरी है क्या ? निर्गुण्या रोते हुए कहती है --" मैं यह काम नहीं कर सकती ।" [55] इस पर माई गाली देते हुए कहती है --"मेरे बेटे की जिनगानी खराब कर सकती है, हरामजादी और यह नहीं कर सकती ? अरे तू क्या तेरा बाप भी उठाएगा, चल उठा ।" [56] माई निर्गुण्या को बुरह से पीटती है । मार खाते-खाते वह बेहोश हो जाती है । मामु की थोडी सहानुभूति निर्गुण्या के पर है । जब उन्हें इस बात का पता चलता है तब टेस में आकर पहले तो माई को धमकाते हैं पर बाद में निर्गुण्या से कहते हैं --" माई का कहना ठीक है तुम्हें हमारे पुश्तैनी काम की आदत तो डालनी ही होगी । इसके बिना बिरादरी में मुंह कैसे दिखाओगी ? जिस घर में आई हो उसके कायदे कानून से नहीं चलोगी तो बदनामी होगी कि जरूर किसी और जात की औरत को मोहना भगा लाया - है । " [57]

नागर जी ने इस उपन्यास में निर्गुण्या का जो चरित्र-चित्रण किया है वह यथार्थ भी है और गरिमायुक्त भी । प्रारंभ में अदम्य काम-लिप्सा से परिचालित निर्गुण्या संघर्ष के ताप में तपकर निखर उठती है । निर्गुण्या का संघर्ष दोहरा है । एक ओर वह मेहतरानी बनकर अपने जन्मजात संस्कारों से जूझती है तो दूसरी ओर वह अपनी अदम्य काम - वासना से भी लड़ती है । निर्गुण्या के पात्र का लेखक ने उदात्तीकरण किया है (Sublimation) यह भी एक विचित्र संयोग है कि जब तक वह ब्राह्मण समाज में रही उसका निरंतर पतन होता गया, परन्तु काम - वासना के कारण ही सही, मोहना के साथ भागकर वह मेहतरानी बनी तब अपनी वासनाओं के साथ मानों उसने विजय प्राप्त कर ली, वह मानो - योगिनी बन गयी । राम और श्याम जैसे अव्यक्त रूपों के बजाय वह मोहना को भजती है । निर्गुण्या में यह परिवर्तन फकीर बाबा के कारण आया है फकीर बाबा निर्गुण के जीवन में एक अलौकिक शक्ति के रूप में प्रवेश करते हैं । उनके कारण निर्गुण्या में संघर्षों से जूझने की शक्ति पैदा होती है । उपन्यास के अन्त में निर्गुण्या एक भरापुरा सम्पन्न परिवार छोड़कर जाती है । उसका पुत्र निर्गुण और पुत्र शकुन्तला उच्च शिक्षा प्राप्त करके नौकरी में लग जाते हैं ।

उपन्यास में आपात काल में जनता पर किये गये अत्याचारों का ब्यौरा भी मिलता है । तत्कालीन सरकार की तानाशाही पर लेखक खूब व्यंग्य करते हैं । इस सन्दर्भ में स्वयं लेखक का कथन है --" इस उपन्यास का अधिकांश भाग इमरजन्सी के ही काल में रचा गया । सन् 1975 के अन्त में इसे लिखना आरम्भ किया इमरजन्सी के दौरान सुनी हुई बातें मन को प्रभावित करती थी । उनका असर तो कहीं न कहीं उजागर होना ही था ।" [58]

उपन्यास में नागर जी ने ब्राह्मण समाज के अनेक अन्तर्विरोधों पर भी चोट की है । थानेदार बसन्तीलाल जब निर्गुण्या को कहता है -

कि ब्राह्मण के घर जन्म पाकर वह एक मेहतर के साथ क्यों भाग गयि , तब तब निर्गुण्या उसका सटीक उत्तर देती है —"पचासों ब्राह्मणं - ठाकुर, बनिये, खत्री, कायस्थ और मुसलमान जब इन मेहतरानियों के साथ बदकारियां करते हैं तब आपको बुरा नहीं लगता ?" [59] इसके जबाब में बसन्ती - लाल कहता है कि मर्दों की बात और है, पर तुम तो उच्च कुल में पैदा हुई थी । इसके जबाब में निर्गुण्या कहती है —" हां, मैं । जब बारह बरस का अकाल पड़ा था तब तो भूखे विश्वामित्र जी ने सुपच के घर घुसकर कुत्ते के मांस की चोरी की थी । मुझ अकाल की मारी ने भी अगर ऐसा पाप ... ।" [60] इस पर थानेदार आगबबूला होकर कहता है --" चुप करो, शर्म नहीं आती तुम्हें ? ब्राह्मण के घर जन्म पाकर .... ।" [61] उसके उत्तर में निर्गुण्या व्यंग्यपूर्ण मुस्कराहट बिखेरते हुए कहती है --" ब्राह्मणं ? राय साहब पंडित बटुक प्रसाद ऊंचे कुल के ब्राह्मण होते हुए भी खुलेआम मुसलमान रण्डी रखते थे । बाद में मेम भी रखी । उनके ऊंचे कुल की ब ब्राह्मणी घरवाली ने अपने नौकर खडक बहादुर को और न जाने किन-किन नौकरों , मालियों और नाते-रिश्तेदारों को अपना खसम बनाया था । आपको भी बनाया था । कौन-सी जात का आदमी छूटा उनसे । खुद मेरा बाप भी हर तरह की औरत से अपना काला मुंह करता रहा निगोडा । अरे दूर कहां जाए, खुद हमारे दारोगा जी साहब भी ऊंचे कुल के होकर इस ऊंचे कुल की और को नीचे गिराने में कुछ कम बहादुर साबित नहीं हुए ।"[62]

इस प्रकार निर्गुण्या मोहन से प्रेम करके मेहतरों की बिरादरी में सामिल हो गयी । उसने उस समाज के शोषणं और दलन को स्वयं अपनी आंखों से देखा । अतः समय के साथ उसमें परिपक्वता आती गयी और बचपन में मिले कुसंस्कारों पर क्रमशः विजय प्राप्त करती गई और अपना जीवन मेहतरों की उन्नति हेतु सेवा के पथ में उसने लगा दिया ।

प्रस्तुत उपन्यास में भंगी समाज के आर्थिक और यौन शोषण का चित्रण मिलता है । एक हाकिम रवजी की नौकरी के लिए पन्द्रह सौ रुपये रिश्वत मांग रहा है और शर्त यह कि यह पैसे अपनी औरत के हाथों भेजना

है । पुरूष स्त्री को जाने के लिए मजबूर करता है, उसकी पत्नी उसका विरोध करती है । पुरूष उसे मारता-पीटता है । दूसरी स्त्री बीच - बचाव करते हुए कहती है — "तुम तो बेकार पीछे पड़े हैगें । अरे यह हाकिम लोग बड़े मुरदार होते हैंगे । हरामजादे इज्जत की इज्जत लूटेंगें और पैसे भी पूरे नहीं देंगे । भला बताओ, एवजी की नौकरी के लिए पन्द्रह सौ रूपये मांग रहे हैंगे ऊपर से शर्त यह भी है कि औरत के हाथ भेंजे । यह कोई भलमानसाहत हेगी । महीने भर बाद फिर वही चरखा । अपनी औरत को कुतिया बनाओ और ऊपर से हजार पांच सौ फिर चटाओ तो नौकरी पक्की । अन्धेर खाता है ।" 63

इस पर आदमी कहता है --" मजलूम और गरजमंद आदमी सब कुछ कर सकता है । और तेरी इज्जत है ही कहां ? कुतिया, रण्डी, और गरीब की जोरू की भला क्या इज्जत होती है ? मेरी जी न दुखाओ, कहे देता हूं नहीं तो भगवान कसम ऐसा ऊब गया हूं जिन्दगी से कि तुझे मार-मार कर फांसी पर चढ़ जाऊंगा ।" 64

उपन्यास में निम्न जातियों में भी छुआछूत की भावना का उल्लेख मिलता है । सत्यनारायण की कथा वाले प्रसंग में अन्य हरिजन जाति के लोग नब्बू की पिटाई कर देते हैं नब्बू मेहतर है और बल्लभटेर ( ) बनता है । जब वह पिट-पिटाकर अपने घर लौटता है तब निर्गुण्या उसे पूछती है कि उसकी यह दुर्दशा किसने की । इसके उत्तर में नब्बू आक्रोश के साथ कहता है --" यह उन लोगों ने किया है जो हमारी ही तरह अछूत और हरिजन हैं और जो अपने आपको गांधी महात्मा का चेला मानते हैं ।" 65

उपन्यास में यह भी बताया है कि निम्न वर्ग के कुछ लोगों में समानता की चेतना पायी जाती है । निर्गुण्या के पुत्र और पुत्री में यह चेतना है । स्वयं निर्गुण्या आर्य समाज के सहयोग से इस समाज में चेतना लाने का प्रयत्न कर रही है । बालिमीकी जयंती और सत्य नारायण की कथा इस चेतना को द्योतित करते हैं । निर्गुण्या के पुत्र निर्गुण मोहन

में सवर्णों के प्रति आक्रोश की भावना मिलती है। एक स्थान पर वह कहता है --" मैं उस ठाकुर के बच्चे से कभी माफी नहीं मांगूगा, अगर वह अपने को महंत समझता है तो मैं भी महत्तर हूं। किसी से कम नहीं। मैं सर्विस से इस्तीफा दे दूंगा, मगर इन बाभन, ठाकुर, बनियों, कायस्थ वगैरा कम्युनल रिएक्सनरीज को लिफ्ट नहीं दूंगा।" 66

स्वयं मोहन में भी यह भावना मिलती है। वहीदा डाकू के मर जाने के उपरान्त जब मोहन सरदार बनता है, तब वह सवर्णों पर भरपूर अत्याचार करके बदला लेने का सुख अनुभव करता है। इस उपक्रम में अनेक सवर्ण स्त्रियां उसकी हवस की शिकार भी होती हैं। वह एक सम्पन्न बैरिस्टर की कन्या को अपने आड्डे पर बुला कर उसे झाडू पंजा थमाकर मेहतरानी का काम करने पर विवश करता है। मोहन की मामी निर्गुण से जो मैला उठवाती है उसमें भी यही प्रतिहिंसा की भावना कार्य कर रही थी।

उपन्यास में मेहतरों की धार्मिक, सामाजिक स्थिति पर भी प्रकाश डाला गया है। इन लोगों में हिन्दू और मुसलमान दोनों धर्मों की कुछ बातें मिलती हैं। उपन्यास का एक पात्र इस सन्दर्भ में कहता है-- "बस्ती में यह आपसी बहसें तो चल रही थी कि हम लोग हिन्दू है या मुसलमान ? हम लोग नवरातों में व्रत भी करते हैं और रमजान के रोजे भी रखते हैं। हम जन्माष्टमी, होली भी मनाते हैं, कजरी तीज भी मनाते हैं। जितने भी हिन्दुओं के त्यौहार हैं वह सब मनाते हैं। और नमाज भी पढ़ते हैं, तो फिर हमारा कौन-सा धर्म हुआ ? हमारे घरों में भाईयों के हिन्दुआनी और मुसलमानी दोनों ही तरह के नाम रखे जाते हैं। फिर हम अपनी असलियत को क्या समझें ?" 67

इस प्रकार के अनेक प्रश्न न केवल उपन्यास के पात्रों के मन में, बल्कि पाठकों के मन में भी उठते हैं। चारों तरफ से सताया हुआ पद - दलित मेहतर अपनी मेहतरानी की हड्डियों को चिचोड़ता है तो उसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। गुजराती में एक कहावत है -" नबलो

माटी बैरी पर ॠ शूरो" एक बार निर्गुण्या देखती है कि एक मेहतर अपनी पत्नी को गिराकर उसकी छाती पर सवार हो जाता है और उसका गला घोंटना चाहता है । निर्गुण्या तेजी से आगे बढ़कर एक जोरदार तमाचा उसे मारते हुए अलग कर देती है और कोतवाली में टेलीफोन करके पकडवा देने की धमकी देती है तब मेहतर फुक्का फाडकर रोने लगता है और निर्गुण्या से कहता है --" पकडाती क्यों ह्रौ हो बच्ची ? फांसी चढवा दो फांसी । मैं तो आप ही फांसी पर ब चढने के लिए इस साली और इसके बेटे साले को मार डालना चाहता हूं कि कु कोई मुझे फांसी दे दे अब इस दुनिया में मेरी गुजर नहीं होती मैं मरना चाहता हूं ।" 68 बाद में निर्गुण्या को पता चलता है कि उस मेहतर की तन्खाह एक सो साठ रूपया थी उसमें से सौ रूपये महाजन का कारिन्दा उसकी जेब में हाथ डालकर निकाल ले गया । पचीस रूपये जमादार की माहवारी दस्तूरी बंधी हुई है और पचीस रूपये पुराने सरकारी उधार की हर महीने बेतन से कट जाते हैं । पहली तारीख को पगार के नाम पर उसकी जेब में बचते हैं केवल दस रूपये । अतः उसका आक्रोश और कुंठा के कारण वह अपनी बीबी पर टूट पडता है ।

इस प्रकार प्रस्तुत उपन्यास में अछूतों में भी अछूत समझे जाने वाले मेहतर समाज की कथा-व्यथा और कुण्ठा को लेखक ने यथार्थतः चित्रित किया है ।

¦12¦ रेतीला मोती :---

राजकुमार त्रिवेदी द्वारा प्रणीत प्रस्तुत उपन्यास में यद्यपि विधवा की दयनीय एवं दर्दनाक स्थिति, अश्पृश्यता, जमींदार महाजन के अत्याचार और शोषण तथाकथित सभ्य समाज के हितचिंतकों और कलाप्रेमियों का ढोंग, छल-कपट, आधुनिक महिलाओं का स्वैआचरण और उसके दुष्परिणाम होटलों में चलने वाले दुराचार, ज ज्योतिष आदि अन्ध विश्वास तथा रिश्वत

और धन की सहायता से अकरणीय को भी करा ले जाने की हिकमत जैसी अनेकों समस्याओं को लिया है, तथापि भगत खेडा गांव के चमार युवक रघुनाथ की कथा के कारण वह दलित चेतना से अनुप्राणित हो गया है। उपन्यास के मुखपृष्ठ पर लेखक ने उसे एक सामाजिक यथार्थवादी उपन्यास घोषित किया है। उपन्यास के प्रारम्भ में लेखकीय वक्तव्य - "अपनी बात" में लेखक ने स्पष्ट किया है कि समाज के विभिन्न वर्गों के पात्रों द्वारा वे यह दिखाना चाहते हैं कि व्यक्ति चाहे तो मोती-सा बन जगमगा उठे और न चाहे तो रेत-सा पड़ा खसाता रहे। [69]

चमार युवक रघुनाथ लेखक के उक्त मंतव्य को चरितार्थ करता है। प्रस्तुत उपन्यास में उत्तर प्रदेश के भगतखेडा नामक गांव के परिवेश को लिया गया है। भगतखेडा गांव के बिहारी महाराज न केवल मंदिर के महंत हैं, अपितु जमींदार भी हैं और अपनी सत्ता, संपति और कूटनीति के बल पर छल-कपट तथा तिकडमों से गांव भर के लोगों को परेशान करते रहते हैं। गांव के गरीब लोगों की अधिकांश जमीन, खेत और बाग - बगीचों को उन्होंने हथिया लिया है। ब्राहमण होने के कारण शूद्रों और चमारों के प्रति उनका व्यवहार अमानवीय एवं कठोर है। बिहारी महाराज के अमानुषी व्यवहार के कारण ही रघुनाथ अपनी बहन सोहिनी को लेकर कानपुर चला जाता है। मनोवैज्ञानिक एडलर महोदय के क्षतिपूर्ति सिद्धान्त के अनुसार मनुष्य किसी प्रकार की हीनता ग्रंथी से युक्त क्षति की पूर्ति के लिए जमीन-आसमान एक कर सकता है। यह भी देखा गया है कि कोई युवक जब अपने गांव से दुःखी, प्रताडित और अपमानित होकर बाहर निकल जाता है और यदि उसमें प्रतिभा और सत्व है तो वह असाधारण रूप से प्रगति के पथ पर अग्रसर होता है।

रघुनाथ भी कानपुर आकर पढ़ने-लिखने में जुट जाता है। कडे परिश्रम और लगन के कारण वह युनिवर्सिटी की उच्च डिग्री को प्राप्त करने में ही सफल नहीं होता, अपितु आई.ए.एस. की स्पर्धात्मक परीक्षा में भी

सफलता को प्राप्त करता है । फलतः वह कृषि-निर्देशक के ऊँचे पद पर आसीन हो जाता है ।

रघुनाथ को इंग्लैण्ड जाने का अवसर भी मिलता है जहां उसकी भेंट एक अंग्रेजी दम्पति पालित-पोषित भारतीय लड़की से होती है । उस लड़की का नाम लीना था । दोनों एक-दूसरे को प्रेम करने लगते हैं । उसके पश्चात, रघुनाथ पुनः भारत आ जाता है । इंग्लैण्ड में पली-बढ़ी होने के बावजूद लीना के विचार एवं संस्कार बिल्कुल भारतीय थे । अतः वह रघुनाथ को भुला नहीं पाती और उसे ढूंढती हुई भारत आ पहुंचती है । कानपुर जाते समय रास्ते में श्रीकान्त नामक एक सेठ के लंपट व्यवहार के कारण वह बीच रास्ते में उतर पड़ती है । ट्रेन से जब वह उतरती है, उस समय उसे ज्ञात नहीं था कि वह एक भयंकर बीहड़ जंगल में उतर रही है । उसके लिए तो वही मसल सिद्ध होती है कि "घर की जली बन में गई , बन में लगी आग" श्रीकान्त के लंपट व्यावहार से छुटकारा पाने के लिए वह ट्रेन से उतर गई तो जंगल में डाकुओं के हाथ में पड़ गई । परन्तु इससे भी एक सुखद संयोग ही समझना चाहिए कि डाकुओं के सरदार भीखम को उस पर दया आ जाती है और वह उसे सही सलामत रघुनाथ के पास पहुंचा देते हैं । वस्तुतः भीखम जमींदार के अत्याचारों से क्षुब्ध होकर ही डाकू बना था । लीना में उसे अपनी मृत पुत्री ज्योति के दर्शन होते हैं । अपना सारा वात्सल्य वह लीना पर उडेल देना चाहता है । अतः उसके कहने पर ही भीखम विनोबा भावे के मार्ग का अनुसरण करते हुए आत्म - समर्पण कर देता है । उसके बन्दीगृह से मुक्त होने पर लीना और रघनाथ के विवाह भोज का आयोजन होता है ।

यहां उपन्यास में एक दूसरा रहस्य प्रकट होता है । वस्तुतः लीना भगतखेडा के जमींदार बिहारी महाराज की ही पुत्री थी । बचपन में उसके घुटने में चोट लगी थी । रघुनाथ का पिता सुभागी जो बिहारी महाराज का नौकर था, उसे पट्टी बंधवाने के लिए लखनऊ ले जाता है ।

वह बच्ची के साथ गोमती में आयी बाढ़ की चपेट में आ जाता है । बाढ़ पीड़ितों की सहायता करने वाले दल के कारण सुभागी की प्राण-रक्षा तो हो जाती है परन्तु बच्ची लीना उसी बाढ़ में कहीं बह जाती है जो बाढ़ का दृश्य देखने आये अंग्रेज पति-पत्नी के हाथों पड़ जाती है । वे लोग उसे गोद ले लेते हैं और स्वतंत्रता के बाद जब वे इंग्लैण्ड चले जाते हैं तब लीना भी उनके साथ चली जाती है ।

जब बिहारी महाराज को यह बात ज्ञात होती है कि लीना उनकी ही लड़की है तो उन्हें गहरा सदमा पहुंचता है कि उन जैसे बाभन की पुत्री ने एक चमार से विवाह कर लिया । बिहारी महाराज की रूढ़िवादी, जातिवादी परम्परागत अस्मिता इस बात को पचा नहीं पाती है और वे आत्महत्य कर लेते हैं ।

उपन्यास में बिहारी महाराज के पड़ोसी सतीश की कथा को भी लिया गया है । सतीश भी भगतखेडा गांव के अन्य युवकों की भांति से एक आवारा किस्म का युवक था परन्तु रघुनाथ से प्रभावित होकर वह अपने जीवन की राह को बदल देता है । रघुनाथ की अनुपस्थिति में वह उसकी बहन सोहिनी की देखभाल भी करता है । तभी उसका परिचय एक बाल-विधवा मोहिनी के साथ होता है । वह मोहिनी के प्रति आकृष्ठ होता है और अन्ततः उससे विवाह भी कर लेता है । बिहारी महाराज को इस बात का भी आघात लगा था कि सतीश ने एक विधवा से विवाह करके धर्म को भ्रष्ट किया है । इन सब घटनाओं से बिहारी महाराज को ऐसा प्रतीत होता है कि मानो धरती रसातल को जा रही हो। रघुनाथ और सतीश से सम्बद्ध घटनाओं के अतिरिक्त अन्य भी अनेक घटनाओं का आलेखन हुआ है परन्तु हमारा मुख्य सरोकार तो रघुनाथ से ही है ।

कई बार ऐसा होता है कि उच्चवर्ण के युवक छोटी जाति की लडकी से विवाह करते हैं । गोदान, जल टूटता हुआ तथा एक टुकडा इतिहास जैसे उपन्यासों में इसे हम देख सकते हैं । परन्तु कोई उच्च

जाति की लड़की, ब्राह्मण क्षत्रिय वर्ण की लड़की निम्न जाति के व्यक्ति के साथ विवाह करे ऐसी घटनाएं हिन्दी उपन्यास साहित्य में बहुत कम दृष्टिगोचर होती है । शैलेश मटियानी के उपन्यास "नागवल्लरी" में गायत्री ठकुरानी कृष्णा मास्टर जो कि डोम जाति के हैं, विवाह करती हैं परन्तु गायत्री विधवा थी और एक विधवा को अपनी जाति में सुयोग्य मिलना तो दूर रहा, वह पुनर्विवाह करने की स्थिति में भी नहीं रहती है । यहां रघुनाथ और लीना परिणय-सूत्र में बंध जाते हैं उसके दो कारण हैं । एक तो लीना विदेशी वातावरण में पली-बढ़ी है । उसके पालक माता-पिता अंग्रेज थे जो इन बातों से काफी ऊपर उठे थे । दूसरे स्वयं रघुनाथ भारत सरकार में बहुत ऊंचे और सम्मानित होद्दे पर बिराजित था । यही कारण है कि उनका विवाह सम्पन्न हो सका । अन्यथा ऊंची जाति के लोग इस तरह की बातों को बढ़ावा नहीं देते बल्कि कई बार ऐसे प्रसंगों में दलित युवक की हत्या तक हो जाती है । गुजरात के जेतलपुर गांव में इसी प्रकार की बात को लेकर चमार युवक को अभी कुछ वर्षों पूर्व जिन्दा जला दिया गया था ।

प्रस्तुत उपन्यास के रघुनाथ से डॉ० बाबा साहब आम्बेडकर की यह मान्यता और भी बलवती हो जाती है कि पिछडी जाति का उद्धार सुशिक्षित होने में ही हैं । दूसरे डॉ० राम मनोहर लोहिया की इस बात को भी ध्यातव्य रखना होगा कि सामाजिक समीकरणों में गुणात्मक परिवर्तन तभी संभव होगा, जब पिछडी जाति के व्यक्तियों को चाबी रूप (Key-Post) जगहों पर स्थान दिया जाएगा ।

(13) पुराण-पुरूष :---

डॉ० विवेकीराय हिन्दी के एक जाने-माने लेखक, कथाकार आलोचक हैं । उनके "लोकऋण" और "बबूल" नामक उपन्यास काफी चर्चित

रहे हैं । प्रस्तुत उपन्यास में उन्होंने दु:खना कुम्हार नामक एक बुद्ध व्यक्ति को कथा का नायक बनाया है । कुम्हार की गणना भी पिछड़ी जातियों में होती है । गुजरात में कुम्हारों की गणना "बस्वैया" जातियों को होती है, अर्थात, गांव के बड़े लोग जिनको अपनी जरूरत के लिए गांव में बसाते हैं, उनको "बस्वैया" कहा जाता है । नाई, धोबी, कुम्हार, बढ़ई, लुहार आदि जाति के लोग उनमें आते हैं । प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने समाज के एक उपेक्षित वर्ग की कथा को लिया है । अत: इसे हम दलित चेतना का उपन्यास कह सकते हैं ।

दुखना कुम्हार प्रत्येक कार्य में शास्त्र के समर्थन की बात करता हू है । वह जहां-तहां शास्त्र चर्चा लेकर बैठ जाता है । उसकी दृष्टि में दो प्रकार के लोग संसार में पाये जाते हैं -- निशाचर अर्थात, रावण के वंशज और भले लोग अर्थात, राम के वंशज । दुखना अपनी गिनती राम के वंशजों में कराना चाहता है । वह निर्मोही और वीतराग हो गया है । अत: बाहर से वह भिखारी जैसा लगता है । दुखना की इस वैराग्य वृत्ति और शास्त्र चर्चा को उसकी पतोहू सह नहीं पाती । वह दुखना का विरोध करती है, फलत: दुखना उसकी प्रताडना करता है । पतोहू के विद्रोह के कारण दुखना को दुख होता है । अत: वह अपनी कथा- व्यथा कहने के लिए कथाकार के पास चला जाता है । दुखना कथाकार को अपनी कथा सुनाता है, इस प्रकार कथा का तंतु आगे बढता है ।

दुखना का जीवन-बोध और ज्ञान अनुभव बहुत सीमित है । समय-समय पर वह "रामायण", प्रेमसागर, अर्जुन गीता, आदि ग्रन्थों का उल्लेख करना रहता है , किन्तु उन पुस्तकों में क्या लिखा है इससे उसे कोई सरोकार नहीं एक उदाहरण द्रष्टव्य है--" अर्जुन गीता में लिखा है पढ़े - फारसी बेचे तेल यह देखो कुदरत का खेल ।" [70] अब यहां यदि तार्किक दृष्टि से विचार किया जाय तो प्रस्तुत कथन में "काल विरूद्ध दूषण" मिलेगा क्योंकि अर्जुन के समय में और हमारे देश में फारसी के प्रचलन के समय में न केवल कुछ वर्षों का अपितु शताब्दियों का फासला है । ऐसे तो अनेकों

उदाहरण इस उपन्यास में मिलते हैं ।

दुखना का विरोध उसकी पतोहू ही नहीं करती, अपितु गांव के लौड़े-लबारे भी उसकी खिल्ली उडाते हैं, उस पर ढेले फेंकते हैं और उसको छेड़ते हैं ।

आधुनिक समय की एक बहुत बड़ी त्रासदी है श्रद्धाजीवी लोगों का कम होते जाना । आज कोई भी व्यक्ति किसी पर श्रद्धा नहीं करता । सारी मूर्तियां खंडित हो चुकी । ऐसा प्रतीत होता है कि दुखना इस श्रद्धाजीवी पीढ़ी का अंतिम आदमी है । उस गांव में दुखना जैसा कोई दूसरा व्यक्ति नहीं है । अतः वह नये लोगों की पकड़ में नहीं आता है और जब नये लोग उन्हें नहीं समझ पाते तब वह उनके लिए मनोरंजन का साधन बन जाता है ।

उपन्यास का शीर्षक पुराण पुरूष है क्योंकि उसका नायक दुखना एक अतीत में ठहरा हुआ प्राणी है । वह अपनी प्रत्येक बात के लिए पौरा-णिक प्रमाणों को प्रस्तुत करता है । मानो वर्तमान उसके लिए कुछ है ही नहीं , जो कुछ भी है शास्त्र है पुराण है ।

इस उपन्यास के माध्यम से डॉ० विवेकी राय कदाचित यह कहना चाहते हैं कि पिछड़े समाज में दुखना जैसे कई लोग हैं जो आज भी शास्त्रों और पुराणों की बातें करते रहते हैं । उन्हें यह इतिहास-बोध नहीं है कि इन पुराणों और और शास्त्रों के शस्त्रों से ही अल्प वर्ग के लोगों ने बहुजन समाज के हितों को काटने का काम किया है । दुखना जैसे लोग इन यथास्थितिवादियों को बहुत अच्छे लगते हैं । वे उनको "भगत" का बिरूद देकर उनके ईगो दूसरों के सामने तो संतुष्ट करते हैं परन्तु अपने वर्ग और समाज में बैठकर वे दुखना जैसे लोगों की खिल्ली उडाते हैं । अपनी हित - साधना के लिए ये चतुर लोग दुखना जैसे लोगों का साधन के रूप में इस्तमाल करते हैं, हमारे देश में क्रांति नहीं होने का एक कारण दुखना जैसे लोग हैं, जो क्रांति और नये विचारों को पनपने नहीं देते । वे पुराण, शास्त्र, भाग्यवाद, पुनर्जन्म , पूर्वजन्म के पाप-पुण्य, शास्त्र, आदि की बातें करके क्रांति के मार्ग

में अडचने पैदा करते हैं । उच्च वर्ण के पंडित भी यही करते हैं और दुखना जैसे लोग भी यही करते हैं फिर दोनों में अन्तर क्या ? अन्तर यह है कि पंडित लोग बड़े शातिर हैं, बुद्धिमान हैं और एक योजना के तहत यह ये कर रहे हैं । दूसरी ओर दुखना जैसे लोग मूर्ख हैं और अपनी मासूमियत में वे ऐसा कर रहे हैं । अंगूठा काटकर दे देने वाले एकलव्य को एक वर्ग गुरू-भक्त कह सकता है उसकी गुरूभक्ति को लेकर गदगद हो सकता है, परन्तु एक चेतना यह भी हो सकती है जो यह कहे कि एकलव्य का वह कार्य अपनी जाति और समुदाय के हितो को देखते हुए अनुचित था ।

डॉ० श्यौराज सिंह बेचैन की पुस्तक "दलित क्रान्ति का साहित्य" की समीक्षा करते हुए डॉ० दिनेश राम ने लिखा है--"यहां डा० आम्बेडकर की वैचारिक क्रान्ति क्या तात्पर्य है? इसका सीधा-सा अर्थ है कि इस देश के इतिहास, दर्शन, समाज, धर्म और राजनीति की तार्किक एवं बुद्धिवादी ढंग से व्याख्या होनी चाहिए । नीयतिवाद एवं यथास्थितिवाद की निर्मम आलोचना होनी चाहिए । इस देश की बहुसंख्यक जनता को यह बताया जाना चाहिए कि उनकी यह वर्तमान स्थिति उनकी पूर्वजन्मों का फल नहीं, इसकी समाज व्यवस्था को परिणाम है ।" 71

प्रस्तुत उपन्यास में जो पीढ़ीगत वैचारिक अन्तर है उसे शैलेष मटियानी कृत कहानी "सतजुगिया आदमी" में भी देखा जा सकता है । जब गांव भर के दलित युवक यह तय करते हैं कि आगे से कोई भी डॉम मरे ढोर को ढोने नहीं जाएगा । तब हरराम नाम का "सतजुगिया आदमी" अपने ही जैसे एक वृद्ध को लेकर पंडित जी की मरी हुई भैंस को ढोने के लिए दिन ढले चला जाता है और उसी में दम तोड देता है । दुखना भी एक ऐसा ही "सतजुगिया आदमी" है ।

§14§ टपरे वाले :---

कृष्णा अग्नि होत्री द्वारा प्रणीत "टपरे वाले" उपन्यास टपरों में रहने वाले निम्न जाति समाज के लोगों के जीवन को यथार्थवादी ढंग से उकेरा गया है । नगर के एक किनारे पर बसौडों और बसौडन्यों के टपरे है, जहां पर वे पशुतुल्य जीवन बिता रहे हैं । अशिक्षित होने के कारण उनकी आमदनी के साधन अत्यन्त सीमित है । अन्न और वस्त्र के अभाव में उनकी स्त्रियां और लडकियां शरीर का सौदा करने के लिए विवश हैं । अपने-अपने परिवार की रोजी-रोटी के लिए उनको यह गोरखधंधा भी करना पड़ता है । इन टपरे वालों में शायद ही कोई ऐसा घर होगा, जिसकी लड़कियां मजबूरी के कारण या चढ़ती जवानी की उमंगों के कारण या गंदे वातावरण के प्रभाव के कारण, किसी न किसी व्यक्ति के साथ यौन सम्बन्ध न रखती हो । गेंदा, नीला, रामरति वगैरह इस तरह की लडकियां और स्त्रियां हैं । पंचिया पहले बूढे दुकानदार से शारीरिक सम्बन्ध रखती थी , बाद में वह उसके युवा बेटे से जिस्मानी रिस्ता जोड़ती है ।

भयंकर गरीबी और अभावग्रस्त जीवन में भी पुरूष वर्ग शराब और दारू के व्यसन से ग्रस्त है । प्रायः देखा जाता है कि जहां गरीबी और अशिक्षा होती है, वहां पिछडापन होता है और वहां सुरापान का व्यसन भी होता है ।

उपन्यास में गोरेलाल, हल्कू, सुरसती, गेंदा, नीला, रामरति, पचिया, गनेशी, प्यारेलाल, धन्नू, शीला, लीला, मुट्टो, पट्टो, सुरेश, शुक्ला जी, छोटे सरकार, मजूमदार, राजेश, पन्ना आदि पात्र उपलब्ध होते हैं, जो कीड़े-मकोड़ा जैसी जिंदगी जिये जा रहे हैं परन्तु यहां भी लेखक ने पन्न और लीला जैसे कुछ आदर्श चरित्रों की रचना की है । प्रस्तुत उपन्यास के पात्रों के सन्दर्भ में स्वयं लेखिका का कहना है--" मैंने देखा कि एक नहीं कई निम्न जातियों के मनुष्य पशुओं जैसा जीवन निर्वाह कर रहे हैं ।... इनके सोचने का ढंग भी उनके शरीर की तरह ढीला, निर्जीव और स्पंदनहीन है । ३२७

भाग्य की मा को ही सब कुछ जान वे अपने बौने कठघरों से बाहर आने को आतुर नहीं... गरमी की भीषण तपिस और वर्षा के अन्धड़ में जीते बसौड़ महर और बलई । उम्र से पहले ढले इनके जिस्म । छिछलांद में घुंटते, सामाजिक विषमताओं से टूटते, निस्तब्ध आकाश के नीचे गहरी शून्यता से लिपटे बेसहारा लाशों जैसे इन्सान । गंदे टपरों में भिन-भिनाती मक्खियों जैसा इनका जीवन ।" [72]

उपन्यास में टपरों में रहने वाले बसौडों के जीवन की यथार्थ परिवेश को लेखक ने प्रस्तुत किया है । डॉ० रत्नचन्द्र शर्मा इस उपन्यास के सन्दर्भ में लिखते हैं---" परन्तु यह कहना भी असंगत नहीं होगा, कि यथार्थ चित्रण की धुन में लेखिका ने अतिशयता कर दी है, वह अश्लीलता की सीमा तक जा पहुंची है । उपन्यास का प्रत्येक पाठक इस तथ्य का अनुभव कर सकता है । यथार्थ चित्रण और वस्तुएंहै और अश्लील चित्रण और । यथार्थ चित्रण अच्छी बात है परन्तु अश्लील और नग्न चित्रणं को अच्छा नहीं कहा जा सकता । यथार्थ चित्रण की भी तो कोई सीमा होनी चाहिए"।[73]

परन्तु यहा एक बात ध्यातव्य है कि आखिर हम अश्लीलता किसे कहते हैं । वस्तुतः खंडित सत्य ही अश्लीलता है । कोई भी वस्तु यदि उचित परिवेश, संदर्भ और परिदृश्य में आती है तो उसे अश्लील नहीं कह सकते । जहां किसी वस्तु को उसके संदर्भ से काट दिया जाता है, वहां वह अश्लील रूप को धारणं करता है । जब इन बसौडो का जीवन ही निम्न कक्षा का, पशुतुल्य, घृणा और जुगुप्सा से भरा हुआ है, तो उनका यथार्थ चित्रण तो इस प्रकार का ही रहेगा बल्कि दूसरे प्रकार का आग्रह उसे अश्लील बना सकता है । चक्र, मुर्दा घर, अनारो जैसे उपन्यासों में जहां झोपडपट्टी के लोगों के जीवन को लिया गया है, वहां हमें श्लीलता, अश्लीलता के प्रश्न पर नये सिरे से सोचना ह होगा ।

"टपरे वाले " उपन्यास का कथानक संक्षेप में इस प्रकार है । एक टपरे में गोरेलाल अपने परिवार के साथ रहता है । गोरेलाल की मां सुरसती गोरेलाल का व्याह प्यारेलाल की रखैल धन्नू की एकलौती लड़की

गनेशी से कर देती है । ब्याह के बाद गोरेलाल पत्नी गनेशी के साथ अलग टपरे में रहने लगता है । गनेशी से उसे शीला, नीला, लीला, मुट्टो, पट्टो सुरेश आदि अनेक बच्चे होते हैं । परिवार के निर्वाह के लिए गोरेलाल शुक्ल नामक एक व्यापारी के यहां नौकरी करता है । यहां यह टपरेवाले लोगों के जीवनक्ष-संघर्ष और समस्याओं का भी लेखिका ने चित्रण किया है । गोरे - लाल अपनी बहन सरला की सगाई हल्कू बैण्ड मास्टर से करता है परन्तु एक दिन गोरे लाल हल्कू को अपनी मेहतरीक्ष के साथ कढंगी स्थितियों में देख लेता है । अतः गोरे लाल खीझकर अपनी बहन का रिस्ता तोड़ डालता है । मेहतरीक्ष भी लाज शरम छोड़कर भर पंचायत में हल्कू से पाट लगा लेती है ।' सरला , रत्ना नामक व्यक्ति से विवाह कर लेती है, जिसकी मां रामरति एक बड़ी चालाक स्त्री है ।

गोरेलाल जिसके यहां काम करता है, उस व्यापारी शुक्ला जी की मृत्यु हो जाती है । शुक्ला जी की मृत्यु के बाद ब गोरेलाल उसके ही बेटे केक्ष यहां काम करता है, जिसे वह"छोटे सरकार " कहता है । "म्युनि-सिपाल्टी के चुनाव में टपरेवालों के वोट से मजूमदार और छोटे सरकार खड़े होते हैं, बसौडे अपने वोट मजूमदार को देते हैं, फ्लतः छोटे सरकार की हार हो जाती है । छोटे सरकार उसका बदला गोरेलाल से लेते हैं । वे गोरेलाल को नौकरी से हटा देते हैं । अतः गोरेलाल एक सिनेमा होल में गेटकीपर का काम करता है, परन्तु इससे परिवार का भलीभांति निर्वाह नहीं हो पाता । इस बीच मेंक्ष गोरेलाल की बेटी नीला मदन नामक एक लड़के के साथ भाग जाती है । इस घटना को लेकर बड़ा हंगामा होता है, और गोरेलाल की इज्जत मिट्टी में मिल जाती है । परिवार निर्वाह के कार्य में गोरेलाल की दूसरी बेटो लीला कुछ सहायता पहुंचाती है । वह छोटे सरकार के घर जाकर छोटी बहू की बच्ची को खिलाने का काम करती है । इस बीच में उनकी पहली नौकरीनी भाग जाती है , अतः लीला को तीस रूपये महीने की नौकरी मिल जाती है । गोरेलाल की आर्थिक स्थिति में कुछ सुधार होने लगता है । उसका बेटा सुरेश भी हेराफेरी करके दो-चार रूपये

रोज कमाने लगा था । टपरे में रामप्रसाद नामका एक व्यक्ति भी है, वह लीला से विवाह करना चाहता है । गोरेलाल इस रिश्ते के लिए राजी हो जाता है, परन्तु घर के दूसरे सदस्य विरोध करते हैं क्योंकि लीला की नौकरी छूटने से घर की आमदनी पर उसका असर पड़ना संभव था । राम प्रसाद बौखला जाता है और एक दिन खूब शराब पीकर गली में नंगा होकर लीला को पकड लेता है । सब लोग सकते में आ जाते हैं, तब ऊपर की मंजिल परर रहने वाला पन्ना नामका लड़का लीला की सहायता के लिए आता है । वह राम प्रसाद को चार-छ मुक्के लगाकर गिरा देता है और इस प्रकार लीला की रक्षा करता है । पन्ना कालेज में पढ़ता है और खाते-पीते मध्यम वर्ग का लड़का है ।

इस घटना के बाद लीला-पन्ना को मन ही मन प्रेम करने लगती है और हर रोज उसके कमरे की सफाई कर देती है । पन्ना भी उसे चाहने लगता है । लीला चार क्लास तक पढ़ी हुई है, वह पन्ना से और आगे पढ़ना चाहती है । दोनों का प्रेम ज्यादा दिन तक गोपनीय नहीं रहता अतः छोटी मालकिन लीला को एक दिन स्पष्ट कह देती है —" हमारे घर में काम करना है तो यह सब नहीं चलेगा, बड़े घराने में भली लड़कियां काम करती हैं ।" [74] लीला बहुत दुःखी होती है और सारा हाल पन्ना बता देती है । वह नौकरी तक छोड़ने के लिए तैयार हो जाती है परन्तु पन्ना एक समझदार लड़का है । वह लीला को नौकरी न छोड़ने की सलाह देता है और कहता है कि तुम्हें मेरे पास भी अकेले में नहीं आना चाहिए क्योंकि मैं पढ़ने के लिए यहां आया हूं और अप्रैल में चला जाऊंगा । तुम क्यों मेरे पीछे धन्धे पानी से जाओ । यह सुनकर लीला रोने लगती है, और पन्ना भी उदास हो जाता है ।

इस घटना के बाद पन्ना कभी-कभी लीला के टपरे में जाने लगता है । वह लीला का परिचय अपने मित्र राजेश से भी करवाता है। इस बीच में पन्ना के स्वभाव के कारण टपरे वालों में वह काफी लोकप्रिय हो जाता है और उनके सुख-दुःख में हाथ बटाने लगता है । गेंदा नामक एक लड़की को

उसके पति ने त्याग दिया था । सारी वस्तुस्थिति को समझकर पन्ना गेंदा के पति को पत्र लिखता है उसे हर तरह से समझाने की कोशिश करता है और और अन्ततः उनका समझौता भी करा देता है । परीक्षा देने के बाद वह अपने गांव चला जाता है ।

उस समय लीला को दो मास का गर्भ था । वह नौकरी छोड देती है और पिता गोरेलाल के साथ पन्ना के गांव पहुंच जाती है । पन्ना उनके रहने की व्यवस्था अपने खेत के मकान में कर देता है । वह लीला से विवाह करने को तैयार हो जाता है, इस बात के लिए उनकी दादी भी अपनी सहमति दे देती है परन्तु पन्ना का पिता उनमें अडंगा लगा देता है । वह उसके लिए तैयार नहीं । वह अपने बैटे का विवाह का किसी समृद्ध सम्पन्न परिवार में करना चाहता था । पन्ना अपने पिता का खुलकर विरोध नहीं कर सकता, क्योंकि उसके पिता हृदय रोगी थे । पिता अपनी इस बीमारी का नाजायज फायदा उठाते हैं । पन्ना अपने पिता से कह देता है कि वह अन्यत्र भी कहीं विवाह नहीं करेगा । वह लीला आदि उसके पिता गोरेलाल का पांच सौ रूपये देकर शहर लौटा देता है ।

गोरेलाल लीला का विवाह कर देना चाहता है परन्तु लीला न विवाह के लिए तैयार होती है, न पन्ना के बच्चे को गिराने के लिए । ऐसे समय में रामभरोसे उसकी सहायता करता है । वह गर्भ का अपराध अपने शिर पर ले लेता है और विवाह करने की हामी भी भर देता है परन्तु लीला की अनिच्छा के कारण विवाह की तिथि को टाल देता है ।

इस बीच में एक घटना चक्र तेजी से घूमता है । लीला के भाई सुरेश की मृत्यु हो जाती है । दूसरा भाई महेश एक इसाई लड़की से विवाह करके अलग रहने चला जाता है। लीला एक लड़के को जन्म देती है । उसका नाम रखा जाता है बसंत । राजेश के साथ पन्ना का पत्र-व्यवहार चलता रहता है । और राजेश के द्वारा ही उसे सब बातों की सूचना मिलती रहती है । पन्ना की अनुपस्थिति में राजेश लीला की सहायता करता है और उसे बच्चे सहित महाराष्ट्र में अपने सास-ससुर के पास भेज देता है । लीला उनके

यहां नौकरी करती है और साथ-साथ अपनी पढ़ाई भी जारी रखती है। मेहनत और लगन से पढ़-लिखकर लीला अध्यापिका बन जाती है। पन्ना राजनीति में भाग लेने लगता है और एम.एल.ए. का चुनाव जीत कर मिनिस्टर हो जाता है। टपरों के स्थान पर यह सरकार की ओर से पक्की खोलियां बनवा देता है। टपरे वालों के लिये वह एक मनोरंजन गृह का निर्माण भी करवाता है। उसकी शिलान्यास विधि के लिये वह टपरों में पहुंचता है। उस समय लीला भी अपने पिता से मिलने आयी थी। वह लीला को पहचान लेता है और उसके बेटे बसन्त से शिलान्यास करवाता है। वह सबके सामने लीला को पत्नी रूप में भी स्वीकार करता है।

उपन्यास के कथानक से यह स्पष्ट होता है कि उपन्यास में टपरों में रहने वाले दलित वर्गीय समाज का यथार्थ चित्रण किया गया है। उपन्यास में चित्रित प्रायः सभी बसौड़े कमोबेस रूप से एक जैसे ही हैं। गोरेलाल और उसकी पत्नी गनेशी को दूसरे बसौड़ों की तुलना में कुछ अधिक उदार बताया है। राम भरोसे भी एक आदर्श चरित्र है। वह न केवल लीला की सहायता करता है अपितु लीला को बदनामी से बचाने के लिये पन्ना के पाप को भी अपने शिर पर लेने की तत्परता दिखाता है। पन्ना और लीला आदर्श प्रेम के प्रतीक हैं। पिता की नाजुक स्थिति के कारण वह उस समय तो लीला से विवाह भी करता है परन्तु दूसरी ओर वह अपने परिवार को बता देता है कि यदि वह लीला से शादी नहीं करेगा, तो किसी अन्य से भी नहीं करेगा। बाद में जब वह बड़ा आदमी हो जाता है, तब उपयुक्त अवसर मिलने पर वह सबके सामने लीला को पत्नी रूप में स्वीकार करता है। लीला को पन्ना से गर्भ रहता है तब उसकी सामाजिक - पारिवारिक स्थिति विचित्र- सी हो जाती है। रामभरोसे ऐसी स्थिति में भी उससे विवाह करने को तैयार होता है। कोई दूसरी लड़की होती, तो ऐसी स्थितियों में खुशी-खुशी उस प्रस्ताव को स्वीकृत कर लेती। पर लीला ऐसा नहीं करती। पन्ना के प्रति उसका जो प्रेम है, उसमें वह बाल बराबर भी दरार नहीं पडने देता। एक स्थान पर वह राम भरोसे से कहती है --"

" मुझे मार डालो परन्तु मैं पन्ना बाबू के अलावा अपने शरीर पर किसी को अधिकार नहीं दे सकती ।" [75] पन्ना का चरित्र भी लीला के चरित्र से किसी प्रकार कम नहीं । एक स्थान पर पन्ना को पूछती है --" क्या नींच जाति में जनम लेना इतना बड़ा अपराध है, पन्ना बाबू, कि उसकी नियति को भी खोटा समझा जाये ।" [76] जो उसके उत्तर में पन्ना कहता है --" ऐसा सभी तो नहीं समझते, पर तुम्हारे टपरों में कुछ गन्दगी है न ? " [77] फिर भी पन्ना बाबू उन्हीं टपरों में उत्पन्न हुई लीला के प्रेम पर और उसकी सच्चरित्रता पर न केवल विश्वास करता है, बल्कि मिनिस्टर होने के बावजूद उससे विवाह भी करता है । हिन्दी में एक कहावत है -- "जली तो जली पर सिकी भी खूब" यह कहावत लीला के चरित्र पर पूर्णतया खरी उतरती है । इस प्रकार प्रस्तुत उपन्यास में लेखिका ने दलित जीवन के दोनों पक्षों को उद्घाटित किया है । दलित जीवन में कीचड़ ही कीचड है पर उसी कीचड में लीला जैसे कमल भी खिलते हैं ।

§15§ मकान दर मकान :---

बाला दूबे कृत इस उपन्यास में सवर्ण-असवर्ण प्रश्न को अनेक यथार्थ घटनाओं के परिप्रेक्ष्य में विश्लेषित किया गया है । सवर्णों के छुआ - छूत सम्बन्ध ढोंग को भी उसके सही रूप में प्रस्तुत किया गया है । चेरी-चोरी जूठन खाने वाले गंगा प्रसाद मदारी भंगी के हाथ का प्रसाद खाने वालों से जाति से बहिष्कृत करने की बात करते हैं । इसमें लेखक ने एक और आयाम को भी लक्षित किया है कि जातिगत संस्तरण असवर्णों में भी पाया जाता है "नाच्यौ बहुत गोपाल" में सत्य नारायण की कथा वाले प्रसंग में दूसरे अछूत ही मेहतरों का कथा-प्रवेश के लिए विरोध करते हैं । "धरती धन न अपना" में काली इसी कारण से ज्ञानों से विवाह नहीं सकता । प्रस्तुत उपन्यास में भी समेरा भंगी की लड़की किस्नो और ग्यासिया चमार के लडके में प्रेम हो जाता है । वे दोनों विवाह करना चाहते हैं, परन्तु इस बात को लेकर

दोनों पक्षों में लाठियां चल जाती हैं । अतः दोनों इसाई बन जाते हैं । अब वे भंगी रहे न चमार । अस्पताल में उन्हें झाडू-पोंछा की नौकरी भी मिल जाती है । शहर में उनकी भी इज्जत होने लगती है । वे गिरजाघर जाते हैं और ईसामसीह के गीत गाते हैं । तथाकथित बड़े आदमी अपनी ऐयासी के लिए निम्न जाति की स्त्रियों से रास रचाते हैं और उनके द्वारा अधिकार की मांग करने पर उन्हें बेरहमी से रेत दिया जाता है । उसका भी एक उदाहरण मिलता है । "रतनगढ़ हाउस" के नाम से प्रसिद्ध भूतों वाले विशाल बंगले के राजा का प्रेम बिजना नामक डोमनी से हो जाता है । बिजना को राजा से गर्भ रहता है । जब वह उसकी कोख में पल रहे राजा के पुत्र के लिए कुछ अधिकार मांगती है, तब राजा उसे जल-विहार के बहाने पानी में डूबोकर मार डालते हैं —" आखिर थी तो डोमनी । हरामजादी यह भी नहीं सोचती कि रानी मां के हक के लिए कितनी बड़ी बात कह दी । रानी सा हमारे खान-दान की शोभा हैं । वह हमारी पगड़ी की कलंगी है ।" 78

(16) "धरती धन न अपना " :---

"धरती धन न अपना" जगदीश चन्द्र का प्रथम उपन्यास है परन्तु प्रथम होते हुए भी इसकी इधर की प्रमुख औपन्यासिक कृतियों में परिगणना होती है । लेखक एक प्रगतिवादी दृष्टि संपन्न व्यक्ति है । वह अर्थशास्त्र का भी अध्येता है । 79 इसके पूर्व अनेक उपन्यासों में हरिजन-चमार की समस्याओं को लिया गया है, परन्तु हरिजन और केवल हरिजन की समस्याओं को केन्द्रस्थ करने वाला हिन्दी का यह प्रथम उपन्यास है । 80 हरिजनों के हो रहे अपमान, उन पर होते अत्याचार तथा उनकी विपन्न अवस्था इन तीनों की संतापत्रयी है "धरती धन न अपना" । 81

उपन्यास के केन्द्र में है पंजाब के जिला होशियारपुर का एक गांव - घोड़ेवाहा । घोड़ेवाहा गांव, उसकी चमादड़ी और उसमें रहने वाले

ढेरों लोग- काली, चाची प्रतापी, ताई निहाली, निक्कू, जितू, नंदसिंह, संता सिंह, बाबा फत्तू, बन्तों, ज्ञानों, मंगू आदि चमार तथा गांव के हरनाम चौधरी, धड्डम चौधरी, मुंशी चौधरी, छज्जू शाह, डॉ० बिशनदास, टहल सिंह लालू पहलवान जैसे लोग इसके कथ्य के तानों-बानों को बुनते हैं । लेखक को गांव का और गांव के इन चमारों का प्रत्यदर्शी अनुभव है, अतः उसके लेखन में एक ताव है । लेखक ने अपने संस्मरण में लिखा है --" मेरा बचपन और लडकपन रलहन में गुजरा । प्रारम्भिक शिक्षा वहीं पाई और हाईस्कूल भी वहीं रहकर दसूहा से पास किया । गर्मियों और सर्दियों की छुट्टियों में मैं घोड़ेवाहा चला जाता था । इस तरह इन दोनों गांवों के जन - जीवन को देखने और समझने के मुझे अवसर मिले ।" 82

उपन्यास का प्रारंभ काली के पुनरागमन से होता है । काली बहुत पहले शहर भाग गया था और अब वहां से कुछ पढ़-लिखकर नयी चेतना के साथ तथा कुछ अच्छी-खासी रकम कमाकर लाया है । काली की आर्थिक स्थिति दूसरे चमारों से अपेक्षाकृत अच्छी है, अतः चमादडी के सब लोग उसे इज्जत की नजरों से देखते हैं । जितू आदि तो उसे "बाबू काली" कहते हैं । छज्जू शाह भी उसे "बाबू कालिदास" कहता है तथा हरनाम सिंह चौधरी भी उसका प्रत्यक्षतः अपमान करने का साहस नहीं कर सकता । शिक्षा, चेतना तथा आर्थिक संपन्नता से क्या हो सकता है, उसका संकेत हमें काली के चरित्र से मिलता है । भारतीय गांवों में इन हरिजन-चमार मेहतरों की जो दयनीय पशुवत अवस्था है , उसके मूल में हजारों वर्षों की उनकी ~~शि~~ अशिक्षा, उन पर स्थापित अनेक निर्योग्यताएं ‹डिसएबीलिटीज› तथा उससे निष्पन्न चैतन्यहीनता और विपन्नता है । हमारे स्मृतिकारों तथा शास्त्रकारों ने हजारों वर्ष पूर्व लिख दिया था कि शूद्र ~~वर्ग~~ वर्ण के लोग धन-संग्रह नहीं कर सकते, क्योंकि उनके संग्रह से उन पर आपत्ति आ सकती है । "शूद्र को सलाह दी गई है कि वह समर्थ हो तो भी उसे धनसंचय न करना चाहिए क्योंकि धन प्राप्त करके वह ब्राह्मणों को ही पीड़ित करता है । शूद्रो हि धनमासाद्य ब्राह्मणानेव

बाधते । §10.129§ मनुस्मृति ।" [83] और प्रस्तुत उपन्यास में हम देखते हैं कि काली के थोड़े धन-सम्पन्न होने से क्या होता है । जब शहर से काली का मनीआर्डर आता है, तब डाक बाबू उसे अस्ती के स्थान पर बारह आने कम देता है । काली डाक बाबू से कहता है कि वैसे चाहें तो आप बारह आने रख लें, पर कायदा तो यही है कि पूरे पैसे दिए जाएं ।" [84] बांध में जो शिगाफ पड़ जाता है, तब गांव भर के सभी चमारों को बेगार पर लगाया जाता है । वे बेगार पर काम करने से इन्कार कर देते हैं और गांव के चौधरियों के खिलाफ सत्याग्रह करते हैं , यह हिम्मत और चेतना कहां से आयी ? यह और ऐसे अनेक नुकीले प्रश्नों को लेखक की यथार्थवादी दृष्टि ने उकेरे हैं ।

काली का गांव में आना, हरनाम सिंह के द्वारा चमारों की पिटाई, मंगू की बेहयाई, काली की संपन्नता से छज्जू शाह का प्रभावित होना, हरनाम सिंह के नौकर मंगू का काली से जलते रहना, काली के द्वारा पक्का मकान बनवाना, उसी में चाची प्रतापी का दम तोड़ देना, काली के घर चोरी होना, उसमें रही-सही रकम का भी चोरी हो जाना, फलतः काली का पुनः कंगाल हो जाना, मुहल्ले में काली की इज्जत में ओट आना, नंद सिंह का पहले सिक्ख और बाद में ईसाई होना, गांव में बाढ़ के पानी का घुसना, बाबा फत्तू के मकान का गिरना, वृक्ष के गिरने से पानी का बहाव चौधरियों के मुहल्ले की तरफ होना, फलतः लाल पहलवान के प्रस्ताव पर बांध को तोड़ देना, गांव का बच जाना, पर बांध में शिगाफ हो जाना, जिसे पूरने के लिए चमारों को काम पर लगाना, शुरू में मजदूरी की आशा से उनका खुश होना, पर बाद में दो-तीन दिन तक पैसों की सू-सां न होने पर उनमें चण-भण होना, आखिर काली जितू जैसे कुछ युवकों के कहने पर काम को रोक देना, चौधरियों तथा गांव के दूसरे लोगों द्वारा चमादडी का बहिष्कार, नाकाबन्दी, कुदरती हाजत तक के लाले पड़ जाना, चौधरियों का भी नुकसान रहा था, अतः दोनों तरफ के लोगों का थोड़ा झुकना, डॉ० बिशन-दास और टहल सिंह §दोनों कामरेड§ का पहले प्रसन्न और बाद में समझौता

होने पर निराश होना, काली और ज्ञानों का प्रेम, काली से ज्ञानों को गर्भ रहना, पिछडी जातियों में भी संस्तरण की स्थिति के कारण दोनों के विवाह में उनके ही समाज का विरोध , ज्ञानों के नाबालिग होने के कारण उसका ईसाई होने में अवरोध, अंततः उसकी मां के द्वारा ज्ञानों को जहर दे देना, ज्ञानो की मृत्यु के बाद विक्षिप्त-सी अवस्था में काली का भाग खड़ा होना जैसी अनेकानेक घटनाओं के द्वारा लेखक ने हरिजनों की समस्याओं का यथार्थ निरूपण किया है ।

अपने सामन्ती अत्याचारों से इस वर्ग की चेतना को कुन्द कर दिया गया है । उन्हें मारना-पीटना, उनसे बेगार लेना, उनका आर्थिक शोषण करना यह बात उनके लिए सामान्य है । "घोडेवाहा" में किसी भी व्यक्ति की पिटाई होने पर उसके कारणों में उसका चमार होना एक पर्याप्त कारण समझा जाता है । किसी चौधरी की फसल कट जाय, उसके यहां कोई छोटी-मोटी चोरी हो जाय या कोई चमार चौधरी के काम पर न जाय तो उसकी पिटाई हो जाती है । स्वयं लेखक के शब्दों में -" चमादड़ी में ऐसी घटनाएं ॅकिसी चमार की पिटाईॅ कोई नयी बात नहीं थी । ऐसा अक्सर होता रहता था । जब किसी चौधरी की फसल चोरी से कट जाती या बरबाद हो जाती या चमार चौधरी के काम पर न जाता या फिर किसी चौधरी के अन्दर जमीन की माल्कीयत का अहसास जोर पकड़ लेता तो वह अपनी साख बनाने और चौधर मनवाने के लिए इस मुहल्ले में चला जाता ।"[85]

पिछडी जातियों की स्त्रियों का नैतिक शोषण तो एक बात है । चौधरी हरनाम सिंह का भतीजा हरदेव मंगू की सहायता से प्रीतो की जवान लड़की लच्छो की इज्जत दिन-दहाड़े लूटता है । लच्छो अविवाहित है, अतः बाद में उसका ब्याह जैसे-तैसे करवा दिया जायेगा, पर उसके योग्य, लड़का तो नहीं ही मिलेगा । हरनाम सिंह भी अपनी जवानी में प्रीतो से फंसा हुआ था । मंगू इतना बेगैरत हो गया है कि उसके सामने हरदेव उसकी बहन ज्ञानों की छातियों की तुलना कच्चे खरबूजे से करता है और इस अपमान को वह चुपचाप सुन लेता है ।[86]

बात-बे-बात इनका अपमान किया जाता है । "साला कुत्ता चमार" जैसे शब्द इनके लिए सामान्य हो गए हैं । मंगू हरनाम सिंह का मुंह लगा नौकर है । एक बार हरनाम सिंह और छज्जू शाह की बात में वह कुछ कहने को जाता है । काली उस समय वहां खड़ा था, अतः मंगू को झिड़क दिया जाता है --" कुत्ते की औलाद, चुप बैठ । कुत्ता चमार अपने आपको बड़ा सरपंच समझता है ।" [87] वस्तुतः यह बात मंगू को नहीं, बल्कि काली को सुनाने के लिए कही जाती है । और स्थिति की बिडम्बना तो यह है कि उच्च-वर्ग द्वारा प्रताडित दूसरी पिछड़ी जातियां, जो पिछड़ी और शोषित तो हैं, पर हरिजन-चमार से कुछ उंची समझी जाती हैं , उनके द्वारा भी इनका अपमान होता है । संतासिंह जो काली का मकान बनाने आया है, वह स्वयं पिछड़ा होते हुए कहता है--" मुझे नंद सिंह ने बताया था कि काली और कनक्कू में झगड़ा हो गया है । उस समय मुझे समझ में नहीं आया कि तेरा नाम ही काली है । सच्ची बात पूछो तो गांव में कुत्तों और चमारों की पहचान रखना मुश्किल है । आते-जाते रहते हैं ना ।" [88] ऐसे तो अनेक प्रसंग उपन्यास में आये हैं ।

इनकी ऐसी अवस्था के पीछे सामाजिक विषमता के साथ-साथ उनकी आर्थिक विपन्नता भी उतनी ही जिम्मेवार है । और इस आर्थिक विपन्नता के कारण सहस्त्राधिक वर्षों से उन पर थोपित विभिन्न नियोग्यताएं हैं, जिसका संकेत उपर दिया गया है । काली की गांव में थोड़ी -बहुत भी इज्जत होती है, चौधरी लोग भी उसे प्रत्यक्षतः कुछ कहने में झिझकते हैं, उसके कारणों में उसकी आर्थिक सद्धरता है । उसकी जाति-बिरादरी वाले भी उसकी बहुत इज्जत करते हैं, क्योंकि वह शक्कर पीता है, सिगरेट पीता है और गेहूं की रोटी खाता है । काली जब शहर से आता है, तब जो रकम वह लाया है, उसमें से दस का एक नोट लेकर चाची प्रतापी छज्जू शाह के पास सौदा लेने जाती है । तब दस के उस नोट को छज्जूशाह विस्फारित नेत्रों से देखता है । (उपन्यास में निरूपित काल चालीस-पचास वर्ष पूर्व का है,

तब इस वर्ग के पास दस का नोट होना भी आश्चर्यों में गिना जाता था ।
इसी नोट का ही प्रभाव है कि वह काली को "बाबू कालिदास" कहता है ।
वस्तुतः उनकी परवशता उनकी विपन्नता के कारण ही है । न उनके पास
कोई ढंग का काम है, न जमीन, न जायदाद । चाय, दूध, छाछ जैसी
चीजों के लिए ये लोग तरस जाते हैं । बात-बात में उनके मोहताज रहते
हैं । फिर कैसे उनके सामने वे सिर उठा सकते हैं । काली जैसे कुछ लोग
यदि कभी साहस करते भी हैं तो उनका बुरा हाल होता है ।

डॉ० कुसुम मेघवाल ने इस उपन्यास की आलोचना करते हुए काली के चरित्र की कमजोरी पर अपनी टिप्पणी दी है --" लेखक ने काली को आरंभ में जिस रूप में प्रस्तुत किया वह रूप एक जागृत दलित का रूप था । शहर से वह समता और समृद्धि की जो दृष्टि लेकर आया था घोड़ेवाहा में उसकी उस दृष्टि का खो जाना आश्चर्य की बात लगती है - असंभव-सी । उसका घसियारा बनना और फिर लल्लू पहलवान की हलवाही करना, ज्ञानो को न अपना सकना । उपन्यास के पूर्वार्द्ध के काली और उत्तरार्द्ध के काली में चारित्रिक विरोधाभास की सृष्टि करता है जो सहज नहीं लगता ।" [89]

इस सम्बन्ध में कुछ बातों पर विचार करना आवश्यक है । पहले तो उपन्यास का काल देखना होगा । उपन्यास में आयी चीज-वस्तुओं के दाम के अंतर्साक्ष्य के आधार पर वह चालीस-पचास वर्ष पूर्व का है । उस समय की दलित चेतना में काली जितना भी साहस कर दिखाना बड़ी बात है । दूसरे लेखक ने पिछड़ी जातियों के ही अंतःसंघर्ष तथा उनमें निहित अर्थ-कुण्ठाओं को भी उठाया है । काली जैसे लोग जो अंततोगत्वा असफल रहते हैं, उसका उत्स उनकी इस "अर्थ-कुण्ठा" में देखा जा सकता है । काली यदि उच्च वर्ग का होता तो शहर से आयातित अपनी समृद्धि से वह अपनी समृद्धि में और इजाफा करता, परन्तु निम्नवर्गीय "अर्थ-कुण्ठा" तथा "जाति-कुण्ठा" के कारण वह अपने गांव के चौधरियों को दिखा देना चाहता है और इस "दिखा देने के वृत्ति" के कारण ही वह ईंटों का पक्का मकान बनवाता है, जिसमें उसकी जमा-पूंजी का एक अच्छा-खासा हिस्सा चला जाता है । शेष

रकम चोरी हो जाती है, उसमें भी गांव वालों की तथा उसकी ही जाति के उससे जलते ऐसे कुछ लोगों की साजिश थी । अतः काली की परिणति असहज नहीं कही जा सकती । दूसरे पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध के काली में विरोधाभास कहां है ? विरोधाभास होता तो काली भी दूसरों जैसा हो जाता । परन्तु उपन्यास के अन्त में काली के विक्षिप्त हो जाने या आत्म-हत्या कर लेने के जो संकेत मिलते हैं, उनसे यही सिद्ध होता है कि काली की आंतर-चेतना मरी नहीं है । देशकाल के विपरीत जाकर काली को सफल दिखाना तो अयथार्थ ही होता । समय आयेगा जब बलचनमा, बीरू (महा-भोज) तथा काली जैसे लोग अपने मिशन में कामयाब भी रहेंगे और तब उपन्यास में उन्हें सफल बनाया भी जाएगा ।

डॉ० कुंवरपाल सिंह इस उपन्यास की समीक्षा करते हुए लिखते हैं --" चमादड़ी के चमारों की पूरी मानसिकता उपन्यास के माध्यम से हमारे सामने आती है । चौधरी हरनाम सिंह जितू को सबके सामने जूते मारता है तो अनायास काली के मन में यह प्रश्न उठता है कि लोग क्यों चुपचाप खड़े हैं? इस प्रश्न का उत्तर भी उसे जल्दी मिल जाता है । जब उसके पास धन समाप्त हो जाता है और वह चौधरी की मजदूरी करने पर विवश हो जाता है । उसका यह विचार सही है कि जहां वे लोग रहते हैं वह जमीन चौधरी की है, जिन खेतों में वे काम करते हैं वह जमीन चौधरी की है और जिन रास्तों पर वे आते-जाते हैं, वह भी चौधरी की जमीन है । गांव की सारी सम्पत्ति के मालिक चौधरी है ।" 90 तभी तो उपन्यास का शीर्षक है -"धरती धन न अपना" ।

अन्त में डॉ० पारूकान्त देसाई जी के शब्दों में कह सकते हैं - "कृति अपनी समस्त संश्लिष्टता एवं समग्रता लिए हुए यथार्थ अपरागत जीवनानुभवों की यात्रा व यंत्रणा से गुजरती हुई रचनाधर्मिता का निर्वाह पूरी ईमानदारी से करती है । अतः प्रथम कृति होते हुए भी इसे हिन्दी के सफल व सार्थक उपन्यासों में परिगणित किया जा सकता है। एक साहित्यिक के अन्तस् की पीड़ा यहां प्रेरणा बनकर यथार्थवादी कला के मूल्यों को उकेरती

हुई दिखाई पड़ती है ।" [91]

§17§ महाभोज :---

"महाभोज" मन्नू भंडारी का एक राजनीतिक चेतना से युक्त उपन्यास है । उसमें मन्नू जी कदाचित प्रथम बार अपने निजी भावनात्मक वृत्तों को त्याग कर एक बृहत्तर वृत्त में आयी है । मन्नू जी के इस उपन्यास के मुख पृष्ठ पर जो चित्र अंकित है, उसे देखकर एक दोहा स्मृति में कौंध जाता है --"लड़ते लड़ते मर गया, सैंतालीस में देश ।

गीदड़ गीध चबा रहे, बदल कबीरा भेश ।।" [92]

प्रस्तुत उपन्यास में "बीरू" मानो देश का प्रतीक है । उसकी हत्या हो जाती है । उसकी हत्या को राजनीतिक पार्टी के लोग, विपक्ष और शासक दोनों, अपने-अपने ढंग से भुनाने का प्रयत्न करते हैं । उपन्यास में जब घटनाओं के सारे जाल छंट जाते हैं, प्रदेश के मुख्य मंत्री उपचुनाव जीत जाते हैं, एक "महाभोज" आयोजित होता है और उसमें वे सब लोग सम्मिलित होते हैं जो किसी-न-किसी रूप में बीरू के केस से जुड़े हुए हैं, तब ऐसा प्रतीत होता है कि मानो ये सब गीध हैं और बीरू की लाश पर मिजबानी के लिए एकत्र हुए हैं ।

"बीरू" भी "धरती धन न अपना" के काली की भांति अपने जाति-बांधवों में चेतना जगाने का कार्य करता है । वह सच्चा है, निर्दोष है, निरीह है, निर्भीक है । पहले उसको नक्सलाइट कहकर जेल में ठूंस दिया जाता है । वहां उस पर तरह-तरह के जुल्म होते हैं । हमारी जेलों में स्वर्ग भी होता है, नरक भी । स्वर्ग भ्रष्टाचारी नेता तथा तस्कराधिराजों के लिए होता है और नरक सीधे-साधे लोगों के लिए । तिहार जेल का उदाहरण तो सबके सामने है, जिसमें न जाने कितने ही लोगों को अन्ध बना दिया गया था । बीरू जेल से आए बाद गुमसुम रहने लगा था, इतने से भी इन तत्वों को संतोष नहीं होता कि एक दिन उसकी हत्या करवा देते हैं ।

सरोहा गांव के सरपंच जोरावर का उसमें सीधे-सीधा हाथ था । बीरू मच्छर था । उसे मसल दिया गया । कितने ही बीरूओं को मसल दिया जाता है । सरोहा में इसे भी दूसरे ही दिन भुला दिया जाता, पर वहां एक उप - चुनाव होने वाला है, जिसमें स्वयं मुख्य मंत्री जी चुनाव लड़ रहे थे । अतः सरोहा की यह बैठक प्रतिष्ठा की बैठक है । बीरू दलित है, अतः उसकी हत्या की घटना को राजनीतिक रंग दिया जाता है और उसे एक असाधारण "पब्लिसिटी" मिलने लगती है । "सच पूछा जाय तो बस मौके-मौके की बात होती है । मौका ही ऐसा आ पड़ा है । इस समय तो सरोहा में एक पत्ते का हिलना भी अहमियत रखता है । डेढ़ महीने बाद ही तो चुनाव - है ।" 93

सभी जानते हैं कि हरिजन-टोला में आग जोरावर ने ही ~~ब~~ लगवायी थी और बीरू (बिश्वेश्वर) की हत्या भी उसने ही करवायी थी, परन्तु जोरावर का आतंक इतना है कि कोई मुंह भी नहीं खोल सकता । बीरू का दोस्त बिन्दा सच ही कहता है कि लोगों की जमीन और गहने ही जोरावर के यहां रेहन नहीं हैं, उनकी जबानें भी उसके यहां रेहन पड़ी हैं । ~~ब~~ बिन्दा बहुत बोलता है, अतः उसे ही बीरू की हत्या के जुर्म में गिरफ्तार किया जाता है । कर्तव्यनिष्ठ पुलिस अधिकारी सक्सेना जो बिन्दा को साथ देता है तथा जो बीरू से सम्बद्ध केस की सही दिशा में तफ्तीश करता है, उसे उसकी कर्तव्य-निष्ठा और सेवा की एवज में निलम्बित किया जाता है । अतः हम भी कह सकते हैं "महाभोज" सामाजिक उत्पीडन और उस पर टिकी हुई व्यवस्था पोषक राजनीति के विरूद्ध एक संवेदनशील रचनाकार की विनम्र किन्तु साहसपूर्ण प्रतिक्रिया है ।" 94

(18) नागवल्लरी :---

"नागवल्लरी" शैलेश मटियानी का वह उपन्यास है जिसमें कुमाऊं के ग्रामीण आंचल के दलित जीवन का सांगोपांग चित्रण मिलता है ।

लेखक ने पहले "सर्पगंधा" नामक उपन्यास लिखा था। उसका परिवर्तित और संशोधित संस्करण ही "नागवल्लरी" है। हमारे समाज में डोम, अछूत, भंगी, चमार आदि जातियों के प्रति एक घोर अवमानना देखी जाती है। मनुष्य के प्रति मनुष्य के ही द्वारा बरती गयी घोर अवमानना और प्रताड़ना के इन बर्बर प्रतीकों का सिलसिला इतिहास में कब से प्रारम्भ हुआ वह एक खोज का विषय है। "नागवल्लरी" में इसके कतिपय पक्षों को उजागर करने का प्रयत्न लेखक ने किया है। इसमें लेखक ने अपने दृष्टिकोण से यह बताने का प्रयत्न किया है कि गांधी जी का हरिजन "सत्ता की राजनीति के दुष्चक्रों में फंसता हुआ राजनीतिक सौदेबाजियों और इस प्रकार राजनीतिक इस्तेमाल की वस्तु बन गया है। संवेदना की जगह राजनैतिक तात्कालिक लाभ प्रणाली से हरिजन समस्या को हल कर दिखाने की कूटनीति घाव को नासूर बनाती गई है। "नागवल्लरी" इस त्रासदी का एक छोटा-सा दृष्टान्त है।"[95]

स्वातंत्र्योत्तर भारतीय लेखक वैयक्तिक कला के पक्ष-धर होते गए हैं। कहीं लोग उन्हें प्रचारक न मान बैठे इस भय से वे हमारी सम-सामयिक समस्याओं से कतराते हैं। किन्तु लेखक के पास अपयश को पचाने की भी शक्ति होनी चाहिए। जब हमारा समाज व देश अनेक समस्याओं की विभीषिका से गुजर रहा है, तब उनके प्रति लेखक की उदासीनता स्वस्थता का परिचायक नहीं है। नोबल पुरस्कार विजेता एक कवि जारोस्लाव सेफर्त के इन शब्दों का उल्लेख यहां अप्रासंगिक न होगा -" यदि सामान्य मनुष्य ऐसे समय में मौन रहता है तो उसमें उसकी कोई योजना हो सकती है, किन्तु ऐसे समय में यदि लेखक मौन रहता है, तो वह झूंठ बोल रहा है।"[96]

अपने युग-सत्यों से जूझना भी लेखक का एक बहुत बड़ा दायित्व है, जिसका यत्किंचित पालन लेखक ने इस उपन्यास के द्वारा किया है।

उपन्यास के केन्द्र में है रायछीना कस्बे के भोगांव नामक गांव के कृष्णा मास्टर। जाति से शूद्र पर कर्म से ब्राह्मण कृष्णा मास्टर प्रयाग विश्वविद्यालय के स्नातक हैं। लेखक के चिंतन व विचारों का पल्लवन इस पात्र

के द्वारा हुआ है । मलियालम के लब्धप्रतिष्ठ साहित्यकार एम. टी. नायर कहते हैं --" द प्रिलिमिनरी टास्क आफ आ राइटर, इज़ टु बेरीमेंइन आ राइटर, आई डु नोट प्रीच इन माय नोवेल्स ।" 97 परन्तु इतना तो है ही कि लेखक ऐसे पात्रों का निर्वाह कर सकता है और उनके द्वारा अभीष्ट चिंतन का पथ प्रशस्त कर सकता है । कृष्णा मास्टर एक ऐसा ही पात्र है ।

हरीराम जी उनके बारे में बताते हुए कहते हैं --" महानुभावों हाथी के पांव में सबका पांव कहा गया है । किसन हमारी वाचा है । प्रयाग की धरती से आया यह ज्ञान-कुंभ हमारी बहुत बड़ी धरोहर है । हमारे भी गाँव के कई बड़े लोग बड़े-बड़े अफसर हैं । सीताराम जी के जंवाई , तिलकराम जी अभी हाल तक यहीं डी. एम. थे ।... और भी बहुत से छोटे-बड़े अफसर हैं, धन-संपदा वाले हैं ... मगर महानुभावों, कोई बाहर का आया हुआ अगर मुझसे यह पूछेगा कि इस गांव की संपदा क्या है, तो मेरे मुंह से यही निकलेगा -- किशन राम ।" 98

कृष्णा मास्टर का प्रभावशाली व्यक्तित्व विद्वता एवं चरित्र से आकर्षित होकर विधवा ठकुराइन गायत्री देवी उनसे विवाह तो कर लेती हैं, परन्तु वह उनसे समूचे परिवेश को नहीं अपना पाती । तिलकराम जैसे "सवर्ण" हरिजनों की भांति वह भी "डूमियोल" से घिनाती है । गरीबी और गंदगी- बाह्य और आंतरिक का चोली-दामन का साथ होता है । चूंकि डोम, शूद्र प्रभृति जाति के लोग अत्यंत गरीब अवस्था में सहस्त्राधिक वर्षों से रहते आये हैं, अतः उनके कुछ जातिगत संस्कार बने हुए हैं । गंदगी भी उनके संस्कार का एक अंग है । गायत्री देवी की घिन का आधार यहां है । गायत्री देवी द्वारा बरती जाती छुआछूत के कारण स्वयं कृष्णा मास्टर को भी लांछित होना पड़ता है । एक स्थान पर सेवाराम कहता है --" जो औरत हम शिल्पकारों की बिरादरी में शामिल होकर भी हमारे हाथों का छुआ खाने को तैयार नहीं - वह ठकुरानी साहिबा नहीं , ब्राह्मणी साहिबा हो -- ऐसी हरिजन-विरोधी औरत के हाथों का छुआ हम भी नहीं खा सकते ।" 99

कृष्णा मास्टर उपन्यास का एक आदर्शवादी चरित्र है । वह सरकार द्वारा प्रबोधित अनुदान-जीवी परंपरा, आरक्षण तथा "हरिजन-कोटा" आदि के विरोधी हैं । वे सोचते हैं कि हरिजनों को अपने परिश्रम तथा स्वाध्याय एवं अथक अध्यवसाय से आगे आना चाहिए । बाल्मीकि उनके आदर्श हैं । हरिजनों के उद्धार का मार्ग उन्हें बाबा जगजीवनराम नहीं, बाबा आम्बेडकर सही प्रतीत होता है ।" 100

उनके अनुसार आज हमारे देश की जो हालत है, हमारे समाज में जो विद्वेष, घृणा आदि का माहोल बढ़ता जा रहा है --इनके पीछे जातियां नहीं किन्तु जातियों की ठेकेदारी हथियाकर अपनी राजनीतिक गोटी लाल करने वाले चंद चालाक "पोलिटिशियन" और "बीबी मरे तो हलवा , मियां मरे तो हलवा" देखने वाले सामन्त, जमींदार और पूंजीपति लोग हैं । .. रिजर्व कोटे के नाम पर नालायकों के भी चुन लिए जाने की गारंटी नेता लोग हमें न दें । हमें चंद आई. ए. एस., पी. सी. एस. या इसी तरह के दूसरे अफसरों के बदले में एक व्यापक समाज की नफरत मोल नहीं लेना है । अगर राज्य के द्वारा आर्थिक रूप से कमजोर व्यक्तियों की सहाय की योजना बिना जाति-भेद के बनाई जाए, तो ज्यादा लाभ सवर्ण जातियों की तुलना में खुद-ब-खुद हमें मिल जाएगा । क्योंकि गरीबी का अनुपात हम लोगों में ज्यादा है ।" 101

यहां कृष्णा मास्टर लेखक के प्रवक्ता के रूप में आए हैं । उपन्यास में जगह-जगह जो चिंतन आया है, उससे उनके आदर्शवादी चरित्र का उद्घाटन होता है । परन्तु कुछ अन्तर्विरोध भी है । जिस आम्बेडकर जी का वे हवाला देते हैं, उन्होंने स्वयं ही हमारे संविधान में पिछड़ी जातियों के आरक्षण की व्यवस्था दी है । दूसरे जो प्रश्न उन्होंने पिछड़ी जातियों की गुणवत्ता पर उठाया है, क्या सवर्ण जातियों की गुणवत्ता को लेकर वैसा ही प्रश्न नहीं उठाया जा सकता ? तीसरे आर्थिक आधार के बन जाने पर "चित भी मेरी, पट भी मेरी" वाली संकीर्ण मनोवृत्ति की ओर कदाचित उनका ध्यान नहीं गया है । जहां सहस्त्राधिक वर्षों से प्रभु-सत्ताओं पर

कुछ अल्पवर्ग के लोग बैठे हुए हों, वहां इस प्रकार के आदर्शवादी युटोपिया का सफल हो जाना कुछ संदिग्ध ही प्रतीत होता है। हालांकि इस विवाद को अलग रख, उपन्यास को देखा जाय तो वह एक पठनीय सामाजिक उपन्यास है।

कल्याण ठाकुर की चर्चा के बिना उपन्यास की समीक्षा अपूर्ण ही रह जायगी। कल्याण ठाकुर कृष्णा मास्टर के विलोम हैं। राजनीतिक अवसरवादिता, हर परिस्थिति को अपने ह हक में भुनाने की प्रवृत्ति, सामाजिक दोहन-वृत्ति, आयाराम-गयाराम की गिरगिटी मनोवृत्ति एक भारतीय राजनीतिक नेता का चरित्र है, जो करीब-करीब वर्गगत -{टाइप्ड} हो गया है, जो यहां कल्याण ठाकुर के रूप में प्रतिफलित हुआ है। उसका बेटा यशवंत स्वयं एक लकड़ी का ठेकेदार है, परन्तु "चिपको आन्दोलन" के तहत जब छात्र नेता मनोहर सिंह के नेतृत्व में "जंगल बचाओ" आन्दोलन छिड़ता है, तो तुरन्त उसकी अगुआनी के लिए तैयार हो जाते हैं और कहते हैं कि- मैंने तो अपने बेटे तक को कह दिया है कि "पहाड़द्रोही" व्यवसाय को छोड़ दे " 102

नारायण कृष्णा मास्टर का ही प्रतिरूप है। अपने पिता डिगरराम की मौत छाना गांव के जमना दत्त पुरोहित की मरी हुई गाय खींचते हुए, रीढ़ में चसक पड़ जाने से हुई थी। जमुनादत्त जी जब बहुत आग्रह करके उसे पांच सो रूपये देते हैं, तब वह उन सारे रूपयों को स्कूल के फंड में दान कर देता है। जिसके यहां खाने के लाले हों और जो स्वयं मजदूरी करके अपना पेट पालता हो, उसका ऐसा व्यवहार श्लाघनीय ही कहा जाएगा। कुल मिलाकर यह एक यथार्थ-परिवेश पर आधृत आदर्शवादी उपन्यास है। जब समग्र शिक्षा जगत में मूल्यों का अभाव पीड़ित कर रहा हो, ऐसे में कृष्णा मास्टर जैसे अध्यापक का होना मरूभूमि के रणद्वीप के समान है।

उपन्यास के शीर्षक के सन्दर्भ में गायत्री देवी के चरित्र को केन्द्र में रखा गया है--" वह सचमुच में "नागवल्लरी है। जल में होने वाली एक

बेल जो पत्थर से लिपटने के लिए अभिशप्त है ।" 103

§19§ चानी : सी.टी.खानोलकर :---

प्रस्तुत उपन्यास की नायिका चानी महाराष्ट्र की एक निम्न जाति की महिला की अवैध संतान है । दूसरे विश्वयुद्ध के दौरान एक गोरे सैनिक ने चानी की मां पर बलात्कार किया था । चानी उस बलात्कार का ही परिणाम थी । इस दुर्घटना के पश्चात, गांव में हैजा फैल जाता है । गांव के अंधविश्वासी लोग इसे एक दैवी प्रकोप मानते हैं । दैवी प्रकोप का है चानी की मां का कुकृत्य । यहां हमारे समाज की यह विडम्बना भी प्रत्यक्ष हुई है कि पुरूष के कुकृत्य का भोग भी स्त्री को ही बनना पड़ता है । यहां अपराधी या पापी तो वह गोरा सैनिक था परन्तु दंड मिलता है चानी की मां को । चानी के जन्म के बाद गांव के लोग दैवी प्रकोप से बचने के लिए चानी की मां को जीवित नदी में बहा देते हैं । इस प्रकार चानी जब पैदा हुई तब पितृहीन तो थी ही, जन्म होने के बाद वह मातृहीन भी हो गयी ।

इस मातृ-पितृ हीन बच्ची को दर-दर की ठोकरें खानी पड़ी, भिखारियों की तरह रहना पड़ा, किस्मत की मारी यह लड़की समाज और प्रकृति के थपेड़ों को सहते हुए किसी तरह युवावस्था को प्राप्त हो जाती है । चूंकि उसका बाप गोरा था, अतः जवानी में उसका रूप निखर आता है । चानी अत्यंत रूपवती थी परन्तु उसका यह रूप ही उसका शत्रु हो जाता है । सुप्रसिद्ध कथाकार जैनेन्द्र कुमार "त्यागपत्र" उपन्यास में मृणाल अनिंदय सौन्दर्य की चर्चा करते हुए कहते हैं कि यह रूप ईश्वर का अनमोल वरदान है परन्तु विधाता जब ऐसा रूप किसी को देता है तो उसका मूल्य भी वसूल कर लेता है ।" 104

चानी के साथ भी यही होता है । उसके रूप-सौन्दर्य के कारण पास-पड़ोस के गांवों के अध्यापक, अठवले, शासन करने वाले अप्पा ,बम्भन

और पौरोहित्य करने वाले पोंगा-पंडित भी उसके अलहड यौवन पर मुग्ध हो, अपना धर्म-~~विवेक~~ विवेक , सत्व, सब कुछ खो बैठते हैं । इन सब के द्वारा होने वाला चानी का यौन-शोषण उपन्यास का एक मुख्य मुद्दा है । सब लोग चानी के शरीर के साथ खिलवाड करते हैं । वह मानों ग्रामवधू हो जाती है परन्तु चानी इसे ही अपनी नियति समझ कर हंसते-हंसते सब कुछ सहती जाती है ।

उपन्यास का एक दूसरा पात्र है दीनु । बालक दिनु नजदीक के गांव की स्कूल में पढ़ता ह था । चानी एक दिन उसकी स्कूल के कक्षों को गोबर से लीपने के लिये जाती है, तब दीनु चानी को पहली बार देखता है । दीनु पर चानी का जादू सा असर होता है और वह उसकी ओर आकर्षित हो जाता है । परन्तु इस आकर्षण में अन्य लोगों की भांति वासना का कोई उबाल नहीं है । दीनु चानी को अपनी दीदी बना लेता है । चानी भी उसे सगे भाई के समान प्यार करती है । वासना और लंपटता के बीच भाई-बहन का यह प्यार प्रेम के एक पवित्र स्रोत के समान है ।

दीनु बालक है । वह चानी को अपने प्राणों से अधिक चाहता है परन्तु चानी के विषय में उसके कानों तक जो बातें आती हैं उन्हें वह समझ नहीं पाता । न चानी उसे समझा पाती है । स्वाभाविक भी है । उसके यौवन के साथ गांव भर के सभ्य (?) लोग जो खिलवाड़ करते थे, उसे एक बहन अपने छोटे निर्दोष भाई को कैसे समझा सकती है । दीनु जब बड़ा होता है तभी इन बातों को समझता है और तब उसके हृदय में अपनी दीदी के लिये और भी अधिक भाव उमड़ आते हैं परन्तु चानी तब तक जीवित नहीं रहती । चानी गांव के जमींदार और उसके ग्रामवासी साथियों के हाथों मारी जाती है । मां की भांति उसकी भी नृशंस हत्या होती है पर सत्ताधीश जमींदार के खिलाफ बोलने की हिम्मत किसी में भी नहीं ।

लोगों के अत्याचारों और अपमानों को सहते सहते चानी में प्रतिशोध एवं प्रतिहिंसा की भावना बिल्कुल लुप्त हो गयी थी । गालिब का शेर है ---" दर्द का हद से गुजर जाना दवा हो जाना" चानी भी सब

कुछ मौन होकर चुपचाप सह लेती है । मार खाना, लांछित होना, अपमानित होना और ठुकराया जाना इस सबको वह अपनी निति मान बैठती है । उसकी आँखों में भी स्वप्न कुलबुलाते थे । वह राजरानी बनना चाहती थी, वैभव और ऐश्वर्य में लोटना चाहती थी, अतः वह अपना यौवन एक काले - कलूटे निर्मम अन्धप्राय को समर्पित करती है । उसने चानी को आश्वासन दिया था कि वह एक दिन उससे विवाह कर लेगा । परन्तु वह आश्वासन एक छलना मात्र था । और लोग सत्ता और संपत्ति के नशे में चानी के यौवन के साथ खिलवाड करते थे , इस अन्ध ब्राह्मण में वह शक्ति तो थी नहीं अतः ~~बि~~ उससे विवाह करने की बात करके वह उसका यौन-शोषण करता था । उपन्यास में महाराष्ट्र के ग्रामीण जीवन की झांकी भी अपने यथार्थ रूप में प्रकट हुई है । यह एक लघु उपन्यास है । दलित स्त्रियों के साथ कैसे कैसे अत्याचार होते हैं उसका खुला-नग्न यथार्थ चित्रण यहां पर हुआ है ।

(20) छाको की वापसी :---

बदी उज़्मा का यह उपन्यास बिहारी मुसलमानों के आंचलिक जीवन को मार्मिक रूप से प्रस्तुत करता है । बिहार के गया शहर में मुसलमानों का एक मुहल्ला है, जिसमें दो-चार घर सैयद मुसलमानों के हैं । हिन्दुओं के समान मुसलमानों में भी जातिगत भेदभाव है । हिन्दुओं की तुलना में यह जातिगत भेदभाव थोड़ा कम है ऐसा कहा जा सकता है । मुसल-मानों की इस फिराक परस्ती के पीछे भी हिन्दू प्रभाव को परिलक्षित किया जा सकता है । सैयद मुसलमान बाकी मुसलमानों से अपने को ऊंचे समझते हैं । हिन्दुओं में जो स्थान ब्राह्मणों का है, करीब करीब वही स्थान सैयदों का मुसलमानों में है । डॉ० राही मासूम रज़ा कृत "आधा गांव" उपन्यास में इस बात को रेखांकित किया गया है । उसमें सैयद मुसलमान छोटी जाति के मुसलमानों को हिकारत की दृष्टि से देखते हैं । प्रस्तुत उपन्यास में

जिस मुहल्ले का चित्रण है, उसमें सैयदों के अतिरिक्त बाकी लोग जुलाहे, कसाई, या दरजी हैं । उपन्यास का नायक तो खाजे बाबू हैं, परन्तु खाजे बाबू का बाल मित्र छाको, जिसका मूल नाम अब्दुल शकुर है, वह निम्न जाति का है । छाको का पिता महेमूद खलीफा दरजी का काम करता है । इस प्रकार प्रस्तुत उपन्यास में मुसलमानों में जिनको नीच या कमीन, आज के शब्द का प्रयोग करे तो दलित, के जीवन को चित्रित किया गया है । इस अर्थ में इसे दलित चेतना से जोड़ा जा सकता है ।

उपन्यास में दो प्रकार के मुसलमान पात्र मिलते हैं – सैयद खान-दान के मुसलमान और दलित मुसलमान । खाजे बाबू सैयद मुसलमानों में आते हैं, वे स्वयं दब्बू प्रकृति के व्यक्ति हैं , पहले पिता से बहुत डरते थे, पिता की मृत्यु के बाद माता से डरने लगे, परन्तु उनके खानदान के दूसरे लोगों को अपने अभिजात्य का गर्व है । खाजे बाबू के पिता सरकारी दफ्तर में कलर्क थे । खाजे बाबू के चाचा डाकखाने में अफसर थे । खाजे बाबू के चाचे का पुत्र (चचेरा भाई) भी ग्रेज्युएट है, सरकारी नौकरी कर रहा है । अतः खाजे - बाबू पिता को अपने खानदान पर बड़ा अभिमान है । खाजे बाबू के चाचा और उनका लड़का हबीब विचारधारा से मुस्लिम लीग्स है और पाकिस्तान बनने के बाद परिवार के विरोध के बावजूद पूर्वी पाकिस्तान में चले जाते हैं ।

ढाका से हबीब भाई लिखते हैं कि इन बंगाली मुसलमानों से तो बिहार के हिन्दू ही अच्छे थे । वस्तुतः उनको वहां प्रथम दर्जे का नाग-रिक नहीं माना जाता और वहां के मूल निवासी मुसलमान उनको हिकरत की दृष्टि से हीन देखते हैं । अतः एक प्रकार से इन मुसलमानों की स्थिति दलितों जैसी ही हो जाती है । जलवायु अनुकूल न आने पर हबीब के पिता तो मर जाते हैं, हबीब भी वहां की स्थितियों से तंग आ जाता है और हालत जब नाकाबिले-बरदास्त हो जाते हैं तब वह पश्चिम पाकिस्तान में तबादले के लिये अपनी दरखास्त दे देता है और उसे उम्मीद है कि शायद

ढाका से करांची उनका तबादला हो जायेगा । परन्तु यह तो सभी को मालूम है कि पश्चिम पाकिस्तान में भी स्थानांतरित मुसलमानों की स्थिति किसी तरह से अच्छी नहीं है । उनको वहां "मुहाजिर" कहा जाता है और उनको हिकारत की दृष्टि से देखा जाता है । अच्छे महत्वपूर्ण स्थानों पर (Key-post) मुहाजिरों को नहीं रखा जाता । अभी हाल ही में प्रदर्शित "सरफरोश" फिल्म में भी यह बताया गया है कि पाकिस्तान में मुहाजिरों निम्न कक्षा का ही समझा जाता है ।

इस उपन्यास में भारत विभाजन से लेकर बंगला देश के निर्माण तक की घटनाओं को चित्रित किया गया है । विभाजन से पूर्व हिन्दू-मुसलमानों में जो पारस्परिक सद्भाव था, उसका चित्रण खाजेबाबू के शैशव की पश्चात् भूमि के रूप में वर्णित किया गया है । उपन्यास में बिहारी मुसलमानों के रीति-रिवाजों का सूक्ष्म एवं यथार्थ वर्णन अंकित करने की चेष्टा लेखक ने की है । ऐसा प्रतीत होता है कि उपन्यास का उद्देश्य बिहारी मुसलमानों की यथार्थ स्थिति को उकेरना है । इसमें पूर्वी बोली मगही का प्रयोग किया गया है ।

छाको उर्फ अब्दुल शकूर के पिता दरजी का काम करते हैं । घर में दो ही कमरे हैं । एक कोठरी में छाको का बाप और उसका परिवार रहता है, दूसरी कोठरी में छाको की विधवा बुआ जैनब (जनवा) अपने बच्चों के साथ रहती है । छाको पिता की दुकान छोड़कर इलाही मास्टर के यहां नये डिजाइन के सूटों की सिलाई सीखने के लिए चला जाता है । काम सीख जाने पर धंधे की तलाश में बिहार के अनेक नगरों में वह घूमता है किसी एक जगह पर टिक कर नहीं रहता । इस बीच में उसका विवाह हो जाता है । विवाह के बाद छाको की पत्नी एक कन्या को छोड़कर मर जाती है।। वह कन्या जनवा के साथ रहती है, अतः छाको कभी-कभी रूपये पैसे से अपनी बुआ की मदद करता है ।

पत्नी की मृत्यु के बाद छाको का कोई निश्चित ठिकाना नहीं रहता । वह लम्बे समय तक अपनी बुआ को नहीं मिलता । एक दिन

जनेवा के पास एक पत्र आता है । जनेबा वह पत्र पढ़वाने के लिये खाजे बाबू के पास आती है । उस पत्र से ज्ञात होता है कि छाको मास्टर इलाही के बहेकावे में आकर ढाका (पूर्वी पाकिस्तान) चला गया है । वहां उसका दिल नहीं लगता है और वह पछता रहा है ।

उपन्यास का मुख्य नायक खाजे बाबू यद्यपि खाजेबाबू अपनी मां से बहुत डरते हैं, तथापि उनकी माता उन्हें बेइन्तिहां चाहती है । वह अपने जेवर बेंचकर खाजेबाबू को उच्च शिक्षा दिलाती है। खाजेबाबू पटना जाते हैं और वहां ट्युशन करके अपनी पढ़ाई पूरी करते हैं । उपन्यास में सैयद मुसलमानों की गिरती हुई माली हालत को भी रेखांकित किया गया है । बहुत दिनों तक बेकार रहने के बाद खाजे बाबू का मुन्शीफगीरी की नौकरी मिल जाती है । चार साल तक वे पूर्णिया, समस्तीपुर, आदि उत्तरपूर्वी बिहार के नगरों में नौकरी करने के बाद दो महीनों की छुट्टियों पर अपने घर आये हैं । खाजे बाबू चार वर्षों के बाद आये थे । अतः पास-पडोस के लोग उन्हें मिलने आते हैं उनसे मिलने वालों में अब्दुल सकूर उर्फ छाको भी हैं । वह एक महीने का वीसा लेकर आया था, गया आने के बाद वह एक महीना और बढ़ा देता है । छाको खाजेबाबू से पूछता है कि क्या वह पुनः यहां का नागरिक नहीं बन सकता ? छाको के इस प्रश्न के उत्तर में खाजे - बाबू अपनी असमर्थता प्रकट करते हैं । पुलिस उसे जबरदस्ती पूर्वी पाकिस्तान भेज देती है ।

इसी प्रकार समय का चक्र व्यतीत होता रहता है । खाजेबाबू की मां बीमार है । उनकी अंतिम दशा का समाचार सुनकर खाजेबाबू जमसेद पुर से घर आये हैं । मां का देहांत हुए चार दिन हो गये हैं । इसी बीच पूर्वी पाकिस्तान, पाकिस्तान से बिलग होकर "बंगला देश" में परि- वर्तित हो जाता है । एक नये देश का निर्माण होता है । बंगला देश के निर्माण के बाद छाको फिर एक बार अपने वतन में आता है तब उसकी मुलाकात पुनः खाजेबाबू से होती है । वह दर्दनाक स्वरों में खाजेबाबू से पूछता है --" बाबू क्या हम यहां नहीं रह सकते ?" खाजे बाबू कहते हैं -

" नहीं छाको , तुम यहां के नागरिक नहीं हो, कानूनी तौर पर तुम यहां नहीं रह सकते । ' खाजेबाबू के यह कहने पर छाको कहता है —" चाहे जेल दे दे या फांसी । हम तो अपने घर को छोड़कर नहीं जायेंगे ।" [105] यह कहते हुए वह तेजी से कमरे से निकल जाता है । यहां उपन्यास का अन्त है ।

इस प्रकार प्रस्तुत उपन्यास में मुस्लिम लीग के प्रभाव में आकर जो बिहारी मुसलमान पश्चिमी पाकिस्तान चले गये उनकी करूण स्थिति का चित्रण अंकित किया है। ऊंची जाति के सैयद मुसलमान-हबीब भाई जैसे भी वहां जाकर "दोयम दर्जे" के नागरिक हो जाते हैं । उनकी स्थिति पूर्वी-पाकिस्तान के मूल निवासी मुसलमानों की तुलना में दलितों जैसी ही रहती है । छाको जैसे लोग जो पहले से ही दलित हैं उनकी स्थिति तो और भी दर्दनाक हो जाती है । वे दोहरी दलित स्थितियों को भोगने के लिये विवश हैं । उनकी स्थिति तो "न रहे घर के न रहे घाट के" जैसी हो जाती है । अपने मूल देश में वह पाकिस्तानी है और पाकिस्तान में वे बिहारी हैं और लोग उनको घृणा और हिकारत से देखते हैं । बंगला देश के निर्माण के बाद भी उनकी स्थिति में कोई सुधार नहीं आता , उनका भविष्य उनकी नियति तो अधर में लटके हुए त्रिशंकु-सी ही रहती है ।

‖2‖ अमीना :-----

सर्वश्री नरेन्द्र हरित द्वारा प्रणीत "अमीना" उपन्यास यद्यपि मुगलकालीन परिवेश को लेकर लिखा गया है , तथापि उसमें वर्णित निम्न मुस्लिम वर्ग की गरीबी और दरिद्रता समसामयिक काल से भिन्न नहीं है । अमीना की स्थिति को देखकर मेरे निर्देशक प्रो० पारूकान्त जी की निम्नलिखित पंक्तियां स्मृति पटल पर उभर आती हैं ---

"जो पहले होता रहा अब भी वो ही हाल ।
आखिर चिड़िया क्या करे, डाल बने हैं जाल ।।"

इस प्रकार ऐतिहासिक परिवेश के रहते हुए भी अमीना को हम एक सामाजिक उपन्यास कह सकते हैं, क्योंकि बाबर, हुमायु, शेरशाह जैसे कुछ ऐतिहासिक पात्रों को छोड़कर सारा का सारा परिवेश तो इधर का ही प्रतीत होता है । इससे यह तथ्य तो प्रमाणित होता ही है कि गरीब और मजलूम हमेशा गरीब और मजलूम रहा है । इस उपन्यास में मुस्लिम संस्कृति सभ्यता और परंपराओं का अच्छा चित्रण हुआ है । एक शराबी-कबाबी, जुआरी, सैनिक की बीबी अमीना के जीवन के दुःख-दर्द को यहां मानवीय संवेदना के साथ प्रस्तुत किया गया है । उपन्यास की शुरूआत जावेद और नूर महेल के परिचय से होती है । उनको ही मुख्य पात्र बनाकर दस-पन्द्रह पृष्ठोंकें के बाद लेखक ने अस्लम का परिचय दिया है - जावेद का पडोसी अस्लम मानो जावेद और नूरमहल ही इस उपन्यास के नायक और नायिका हों किन्तु उपन्यास में अस्लम के प्रवेश के साथ कहानी म मोड़ लेती है और यह कहानी असंदिग्धतया अमीना की कहानी हो जाती है । निम्न मुस्लिम वर्ग की स्थिति दलितों से बेहतर नहीं है, अतः प्रस्तुत उपन्यास को हम दलित चेतना से संपृक्त उपन्यास मान सकते हैं । अमीना की कुल कहानी इतनी है । उसके दो लड़के हैं, कादिर और रहेमान तथा एक लड़की नादिरा है । उसका पति अस्लम बाबर की फौज में घुडसवार सैनिक है । वह जुआरी, शराबी, झूंठी शान दिखाने वाला, सनकी मिजाज, स्वभाव का बुरा और घर में सदा लड़ाई और मारपीट करने वाला आदमी है । वह जाहिदा नामक एक रंडी के कोठे पर पड़ा रहता है औ अपनी कमाई का बहुत सारा हिस्सा उस पर उड़ा देता है । अमीना शांत स्वभाव की पति अत्याचारों को सहन करने वाली, लादी हुई गरीबी में गुजारा करने वाली एक नेकदिल सामान्य मुस्लिम - स्त्री है ।

जावेद और अहेमद अस्लम के दो अन्य साथी हैं । जावेद की पत्नी का नाम नूमहेल है और अहमद की पत्नी का नाम जरीना है । जावेद और नूरमहल के बच्चे होते हैं, पर जीते नहीं हैं । जनमते ही मर जाते हैं ।

अहमद और जरीना के बच्चे होते ही नहीं । अमीना का इन दोनों परिवारों से घनिष्ट सम्बन्ध है । सम्बन्धों की घनिष्टिता का एक कारण अमीना की इस गरीबी भी है । अमीना वक्त बे वक्त आटा-दाल, कपडे-लत्ते आदि इनसे लेती रहती है । फलतः जावेद और नूरमहल अमीना की लड़की नादिरा को तथा अहमद और जरीना उसके दूसरे लड़के रहेमान को गोद ले लेते हैं । गरीबी के कारण अमीना को अपने इन जिगर के टुकड़ों को अलग करना पडता है ।

उपन्यास में अस्लम और अमीना के दाम्पत्य जीवन के उतार-चढ़ावों को भली-भांति वर्णित किया गया है । बाबर के बाद हुमायु बादशाह बनता है । चुनार के युद्ध में अस्लम का दाहिना हाथ तलवार से कट जाता है और बांया पैर बेकार हो जाता है । हालत ठीक होने पर वह बैसाखी के सहारे चलने लगता है । बादशाह की ओर से उसे हरजाने के रूप में सोने की सौ मोहर, चांदी के एक हजार सिक्के, कुछ जेवर और कुछ कपड़े मिलते हैं । इस प्रकार उसकी माली हालत में सुधार होता है, परन्तु गरीब का तकदीर भी गरीब ही होता है । एक दिन अस्लम के यहां डाका पडता है और उसका सब सामान डकैती में चला जाता है । अस्लम का बड़ा बेटा कादिर अब बडा हो गया है । वह हार, गजरे बेंचकर कुछ पैसे कमा लेता है । कादिर की कमाई में से अमीना जैसे तैसे अपनी घर गृहस्ती चलाती है । परन्तु एक दिन शहर कोतवाल अब्बास कादिर को झूठे इल्जाम में पकड़ लेता है । बादशाह के सामने डाके की शिकायत करने के झूठे अपराध में वह कादिर को फंसा देता है और हिरासत में लेकर मार-मार कर उसे बेहोश कर देता है । बादशाह हुमायु तक इस बात की शिकायत बहुत दिनों के बाद पहुंचती है तो वह शहर कोतवाल अब्बास को दंडित करता है । दण्ड स्वरूप उसे अमीना को चांदी के पांच सौ सिक्के और बहुत सा अनाज देना पड़ता है, इधर कादिर को भी फौज में घुडसवार सिपाही के रूप में भर्ती कर लिया जाता है । इस प्रकार थोड़े समय के लिए अमीना-अस्लम के परिवार को

कुछ राहत होती है ।

परन्तु अमीना की तकदीर फिर से सितारों की गर्दिश में आ जाती है । शेरशाह सूरी से युद्ध करते हुए हुमायु पराजित होता है । उस युद्ध में अमीना का बेटा कादिर मारा जाता है । इस प्रकार अमीना का एक मात्र सहारा टूट जाता है और वह फिर से बेसहारा हो जाती है । शहर कोतवाल अब्बास को नौकरी से निकाल दिया गया था । बेकारी के कारण वह चोरी करने लगता है और एक दिन अमीना के घर में ही वह चोरी करते हुए पकड़ा जाता है ।

जावेद और नूरमहल अमीना से गोद ली हुई बेटी नादिरा शादी शरीफ नामक एक मुसलमान युवक से खूब शानोसौकत के साथ करते हैं । बाद में वे लोग उसे घर जमाई बना लेते हैं और उसे रेशमी कपड़े की एक दुकान खुलवा देते हैं । शरीफ अहमद और जरीना द्वारा गोद लिये गये अमीना के बेटे रहेमान को भी करीने से किसी धंधे में लगाना चाहता है । वह तो यह भी सोचता है कि रहमान उसकी दुकान में बराबरी का साझीदार बनकर काम करे । परन्तु रहेमान बुरी संगत में पड़ जाता है । अहमद और जरीना के लाड़-प्यार ने उसे और बिगाड दिया है । उसमें अनेक दुर्गुण घर कर गये हैं । फलतः वह एक दिन घर से भाग जाता है । उसके बाद उसकी भटकन शुरू हो जाती है । मेरठ में एक भटियारन के यहां हमीद नाम से सहारणपुर में एक जौहरी के यहां अब्दुल नाम से तथा लाहौर में एक शेठ के यहां गफूर नाम से वह काम करता है । इस प्रकार वह हेरा-फेरी और ठगी के काम में माहिर हो जाता है । भटियारन के यहां से वह कुछ मोहरों की चोरी करके भागा था, तो जौहरी के यहां से उसने हीरे चुराये थे, जौहरी के यहां भागने से पहले वह एक मुसलमान बुढिया की जवान लड़की जोहरा के जीवन से भी खेलता है, जोहरा के साथ वह प्यार का नाटक रचाता है और अन्ततः वह उसे गर्भवती बनाकर वहां से भाग जाता है। चोरी, ठगी और चार सौ बीसी में पहले तो वह कुछ धन कमाता है, पर हराम की कमाई उसे पचती

नहीं है । लाहौर में उसके यहां भी चोरी होती है और वह फिर सब कुछ गंवाकर रास्ते पर आ जाता है ।

कादिर और रहमान के गम में अस्लम घर छोड़कर चला जाता है और फिर कभी नहीं लौटता । उधर अहमद रहमान की तलाश में निकलता है । रहमान की खोज-खबर लेते लेते वह सहारनपुर पहुंचता है, वहां अहमद की मुलाकात जोरा से होती है । जोहरा ने एक बच्चे को जन्म दिया था और वह पटरी पर बैठकर भीख मांग रही थी । अहमद उसे अपने साथ दिल्ली ले आता है । परन्तु इस बात पर पंच नाराज हो जाता है । जोहरा और उसके बच्चे को घर में पनाह देने के सबक पंचवाले अमीना, जावेद और अहमद के परिवारों का हुक्का-पानी बन्द कर देते हैं । इस प्रकार लेखक ने यहां यह भी बताया है कि गरीबों का शोषण दूसरे वर्ग के लोग तो करते ही हैं , परन्तु उनकी जाति-बिरादरी वाले भी उनका शोषण करने से नहीं चूकते । गोदान में भी होरी को बिरादरी "डांड" भरने के लिए महाजन से कर्ज लेना पड़ता है ।

ॐ एक रात अमीना घर पर सोयी थी , पास में ही जोहरा और उसका बच्चा सलीम भी सोये थे । अचानक अमीना को लगता है कि घर में कोई चोर घुस आया है, अतः वह तलवार लेकर दौड़ती है और चोर की छाती में आरपार कर देती है । चीखों, पुकार से आस-पास के लोग इकट्ठे हो जाते हैं । जोहरा भी जग जाती है । चोर को देखते ही वह दंग रह जाती है और रोते रोते अमीना से कहती है —" अम्मी ये क्या तुमने ? अपनी ही औलाद को मार डाला ? अम्मी ये तो रहमान है ।[106]

कादिर पहले ही युद्ध में मारा गया था और अब रहमान की हत्या खुद अमीना के हाथों हो जाती है । खानदान के आखिरी चिराग को यों बुझते हुए देखकर अमीना कहती है —" यह चोर रहमान नहीं रहमान तो उसी दिन मर गया था, जब उसने देहली छोड़ी । मर जाने दो इसे , हमारा खानदान पाक हो जाएगा ।"[107]

बाहरी तौर पर लोगों को सुनाने के लिये अमीना ऐसा कहती

है, परन्तु उसका माँ का हृदय चित्कार कर उठता है और वह भर-भरा कर गिर पड़ती है । उसके प्राण-पखेरू उड जाते हैं और निस्चेतन काया जमीन पर पड़ी रहती है । उपन्यास के अन्त में लेखक ने अमीना का चित्रण "भारत माता" के रूप में किया है । इस प्रकार प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने ऐतिहासिक परिवेश में रहते हुए भी जिस कथा का आलेखन किया है वह एक सामान्य दलित मुसलमान परिवार की कथा का रूप धारण कर लेती है । अतः इसे सामाजिक उपन्यास कहना ही अधिक सुसंगत होगा ।

(22) नदी का शोर : डॉ० आरीग पुडि :—

डॉ० आरीग पुडि हिन्दीतर क्षेत्र के लेखक हैं । साधारण भाषा में असाधारण वस्तु को प्रस्तुत करना उनकी लेखकीय विशेषता है । उनके उपन्यासों में हमें दलित चेतना प्राप्त होती है । विशेषतः "नदी का शोर" और "अभिशाप" उपन्यासों में दलित वर्ग का पर्याप्त चित्रण मिलता है । समय के साथ साथ दलित वर्ग में जो परिवर्तन आये हैं, उनको रेखांकित करने में लेखक चूकता नहीं है ।

"नदी का शोर" उपन्यास में लेखक ने समाजवादी शक्तियों और पूंजीवादी शक्तियों के बीच के संघर्ष को चित्रित किया है । उपन्यास की कथा नदी पर एक बांध बनने और तोड़ने के षडयंत्र से जुडी हुई है । नदी पर का यह बांध गांव के विकास के लिये बनाया जा रहा था, इस कथा के समानान्तर जो सामान्य जन-जीवन की कथा है उसमें हरिजनों में जो चेतना पैदा हुई है उसकी कथा दृष्टिगत होती है । गांव का भूतपूर्व जमींदार अपनी सत्ता और संपत्ति के बल पर अन्नपूर्णा देवी नामक एक महिला को उस क्षेत्र की विधायिका के रूप में खड़ी करते हैं और जमींदार के पैसों के बल पर वह जीत भी जाती है । अन्नपूर्णा देवी जमींदार के इसारों पर कठपुतली की तरह नाचती है, इतना ही नहीं वह जमीदार को अपना शरीर भी अर्पित

कर देती है ।

अन्नपूर्णा देवी के पति को जब अपनी पत्नी का प्यार नहीं मिलता और वह देखता है कि उसकी पत्नी किसी और की हो गयी है तब वह एक अछूत स्त्री से प्यार करने लगता है । उसके पश्चात, वह एक अन्य अछूत अध्यापिका के साथ सम्बन्ध बनाता है और न केवल उसके साथ उसके पति की तरह रहता है, अपितु उसके साथ ही गांव से चला भी जाता है ।

बांध का ठेका जमींदार अपने आदमियों के नाम पर लेता है । बांध के काम में जमींदार काफी पैसे खा जाता है और उसमें निम्न कक्षा का मटीरियल प्रयुक्त करता है । फलतः बांध अपने आप टूट जाये उसके पूर्व वह उसे तोड़वाने का षडयंत्र रचता है, जिससे कि पुनः बांध बनवाने का ठेका उसे मिले । निम्न वर्ग तथा हरिजनों की सहानुभूति प्राप्त करने के लिये वह एक मंदिर में का निर्माण करता है । उस मंदिर में वह हरिजनों का प्रवेश करवाता है , ताकि उस वर्ग में उसकी जय जायकार हो सके । दूसरी तरफ गांव के अन्य सवर्ण लोग जो सोचते हैं उनके विचारों को लेखक ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है —" अगर हरिजन इस मंदिर में आते रहे तो इससे अच्छा यही है यह खण्डहर हो जाय, पर यह पवित्र मंदिर उनकी अशुद्ध उपस्थिति से कलुषित न हो । जैसे ही हरिजनों ने मंदिर में प्रवेश किया वैसे ही कुछ ब्राह्मण अपने शाल वगैरह लेकर पिछवाड़े के द्वार से मंदिर के बाहर चले गये, उनका विचार था कि मंदिर की पवित्रता भ्रष्ट हो गयी थी । एकत्र भीड़ में भी कुछ हलचल हुई शायद उनमें से भी कुछ उठकर चले जाते, यदि हरिकथा उपक्रम न होता ।" 108

षडयन्त्र के द्वारा जो बांध तोड़ा गया उसके दो चश्मदीद गवाह इसुदास और रामैया हैं । यह दोनों हरिजन पात्र हैं । बांध के तोड़े जाने के विरोध में एक जुलूस निकलता है । जुलूस के आयोजक इसुदास और रामैया को क्रमशः जमींदार एवं राईट की पोशाकें पहनाकर उनके पुतले जैसे बना देते हैं । राईट जमींदार की ठेके कंपनी का मालिक है । जुलूस के बाद एक सभा का आयोजन था । उस सभा में इन दोनों हरिजनों को उन्होंने

जो कुछ देखा है उसे बताने के लिए कहा जाता है । इसुदास और रामैया निडर, बहादुर और साहसी व्यक्ति हैं । वे सभा में आये लोगों को सब कुछ यथातथ्य बता देते हैं । इस प्रकार हम देख सकते हैं कि इसुदास अछूतों की नयी पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करता है । अछूतों की यह नयी पीढ़ी सबकुछ चुपचाप नहीं सहना चाहती । ये अपने पुरखों की तरह गूंगे रहकर अन्याय और उत्पीडन को अब ज्यादा नहीं सहना चाहते । जमींदार उक्त दोनों हरिजनों को मरवाने का षडयंत्र रचता है पर वह उसमें सफल नहीं होता । जमींदार उक्त दोनों हरिजनों को मरवाने का षडयंत्र रचता है पर वह उसमें सफल नहीं होता । परन्तु इसमें हरिजन मजदूर में से कुछेक घायल अवश्य हो जाते हैं । अपने प्राणों की बाजी लगाकर सत्य प्रकट करने वाले इन साहसी युवकों को ग्रामवासी फूलमालाओं से लाद देते हैं । इस प्रकार लेखक जन-मन में रस-बस गयी पारस्परिक छुआछूत की भावना का पर्दाफाश करा देता है ।

बांध की मरम्मत करवायी जाती है। उसके उद्घाटन के लिये मद्रास (अब चेन्नई) से मुख्य मंत्री जी को आमंत्रित किया जाता है । मंत्री जी बांध का उद्घाटन उसी श्रमिक इसुदास के हाथों करवाते हैं और कहते हैं —" मैं इस बांध का उद्घाटन नहीं कर रहा हूं । भारत में इतिहास में शायद पहली बार एक बांध एक ऐसे व्यक्ति द्वारा खोला जा रहा है जिसका इसे बनाने में हाथ है ।" [109] प्रस्तुत उपन्यास में स्वातंत्र्योत्तर भारत में ग्रामीण परिवेश में जो जनचेतना और दलित चेतना उभर रही है उसका दिग्दर्शन कराया गया है ।

(23) अभिशाप :---

डॉ0 आरीग पुडि का यह दूसरा उपन्यास है, जिसमें भारतीय समाज के अन्तर्गत जातिवादी सम्बन्धों का विस्फोटक चित्रण सशक्त एवं मार्मिक ढंग से हुआ है । जन्म पर आधारित जाति व्यवस्था तथा सरकारी

तंत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार हमारे देश व समाज के लिये अभिशाप है , इस तथ्य को लेकर प्रस्तुत उपन्यास को उद्घाटित किया गया है । सरकार के द्वारा समाज कल्याण की जो योजनायें चलायी जा रही हैं , उनमें परिव्याप्त भ्रष्टाचार, व्यभिचार तथा पाखंड का लेखक ने पर्दाफास किया है । दक्षिण भारत में जो जातिगत व्यवस्था है उसकी पृष्ठभूमि में हिन्दी में बहुत कम उपन्यास लिखे गये हैं । जबकि जातिगत उंच-नींच का समीकरण दक्षिण भारत में उत्तर की अपेक्षा कुछ ज्यादा ही है ।

प्रस्तुत उपन्यास का कथा नायक पद्मनाभन स्वयं जाति से अछूत है । अपनी लगन, मेहनत चतुराई और अवसरवादिता के बल पर क्रमशः वह उन्नति के सोपानों को चढ़ता जा रहा है और अन्ततः एक आई. ए. एस. ऑफीसर बन जाता है । परन्तु पद्मनाभन जिस जमींन से उठा है, उसे हमेशा हमेशा के लिये भुलाये रहता है । अपनी जाति के अन्य बन्धु-बान्धवों से मिलने में वह कतराता है । वह सदैव उनसे अलग और स्वयं को उच्च वर्ग का सिद्ध करने के प्रयास में लीन रहता है, फलतः उसे कभी आत्मिक सुख प्राप्त नहीं होता, वह हमेशा एक तनाव में ही रहता है । अपनी इन प्रवृत्तियों के कारण वह कभी तटस्थ होकर आत्मनिरीक्षण नहीं कर पाता । उसकी पत्नी स्नेहा पद्मनाभन से कुछ अलग प्रकार की है, परन्तु अपनी अहमन्यता के कारण वह स्नेहा की महानता को भी नहीं समझ पाता है । फलतः उसके जीवन का अन्त भी उतना ही दुःख सिद्ध होता है जितना उसके जीवन का आरम्भ था । जीवन के अन्तिम समय में उसे अपने बंध-बांधवों से भी घृणित एवं नारकीय जीवन जीने को विवश होना पड़ता है । जिन्हें वह अपने उच्च पद के कारण नींची नजरों से देखता था और उन्हें हर समय अपमानित करता रहता था । पद्मनाभन के ऐसे कलुषित चरित्र के साथ-साथ लेखक ने अछूत कहे जाने वाले दलितों में इधर जो नयी जागृति और चेतना का आविर्भाव हुआ है, उसका सुंदर चित्रण किया है । यह चित्रण सहानुभूति एवं संवेदना के साथ होने के कारण आरोपित प्रतीत नहीं होता । उपन्यास में लेखक ने अछूत कही जाने वाली जातियों की दयनीयता और विवशताओं का जो चित्रण

किया है उसके साथ ही साथ इन विरीत स्थितियों में भी इस वर्ग के लोगों मेंक्ष जो विशेषताएं हैं उनको भी उदघाटित किया है । जो उपन्यास के तथ्य को संतुलित बनाता है ।

नायक पद्मनाभन परिश्रमी, मेधावी एवं प्रतिभा संपन्न है, परन्तु उनमें प्रारंभ से ही अपनी जाति को लेकर एक प्रकार की हीनताग्रंथी है । इस हीनताग्रंथी के कारण जब वे भारत सरकार की नौकरी में उंचे पद को प्राप्त कर लेते हैं, तब ये अपनी जाति और परिवार से कट जाते हैं । अपने इस अपराध-बोध को छिपाने के लिए उनका मन एक तर्क ह्व गढ़ लेता है कि—"उनको मुझसे किसी मदद की उम्मीद नहीं करनी चाहिए । किसी ने कभी मेरी मदद नहीं की । मैं भला क्यों करूं ।" 110

दलित जाति का व्यक्ति अपने शैशव काल में बहुत संघर्ष करता है । उसकी जाति या स्वजन-परिजन के लोग कभी उस काबिल नहीं होते कि वे उसकी किसी प्रकार को सहायता करें । अतः ऐसा व्यक्ति जब किसी उंचे पद आसीन हो जाता है, तब उसे कभी भी ऐसा न सोचना चाहिए कि उन लोगों ने उसकी क्या सहायता की थी । उन्होंने सहायता नहीं की थी क्योंकि वे उस स्थिति में ही नहीं थे, परन्तु पद्मनाभन जब एक ऐसे पद को प्राप्त हो चुके हैं जिसमें ये अपनी जाति के लोगों की सहायता कर सकते हैं तो यह सहायता उन्हें अवश्य करनी चाहिए । इससे उनकी जाति का ही नहीं, अपितु समग्र भारतीय समाज के जातिगत उत्थान में अपना योगदान के वे दे पाते । पद्मनाभन की पत्नी स्नेहा की मानसिकता इस प्रकार की है, इसीलिए पति के पतन की पराकाष्ठा के बावजूद वह अपने स्नेही संबंधियों से व्यवहारिक संबंध बनाये रखती है । स्नेहा जब अपनी ग्ग्ण सास को देखने जाती है, तब भी पद्मनाभन चिढ़ जाता है और सोचता है —" इससे तो यही साबित होगा कि उसका पति कमीना है, जो अपनी माता को भी देखने न आया । वह मुझ पर ही चोट कर रही है, अगर वह इतनी अच्छी है तो दुनिया की नजर में मुझे बुरा बनाने की क्या जरूरत है ? और वह भी उन लोगों में जहां मैंने बचपन काटा था ।" 111

जातिगत हीनभावना के कारण पद्मनाभन क्लब के मेम्बर बनते हैं। वे कहा करते थे कि क्लब की मेम्बरी उनको वह हैसियत देती थी जो अफसरी नहीं दे पाती थी। वे क्लब का बेज भी लगाते थे। एक प्रकार की उनमें हीन भावना थी। जो हमेशा उनको दूसरों को यह जताने के लिए बाध्य करती थी कि वे कितने बड़े थे।" ।।2

जातिगत कुंठा के कारण ही पद्मनाभन मेंकुछ बुराइयों का प्रवेश होता है। उच्च वर्ग के लोगों के अच्छे गुण तो वे नहीं अपनाते, पर उनकी बुराईयों से चिपक जाते हैं। जब वे किसी समस्या से जूझ रहे होते हैं, तब वे शराब और सुंदरी का सहारा लेते हैं। इसी क्रम में कैथरीन नामक एक ईसाई महिला को वे अपनी रखैल बनाते हैं और उसके लिए एक मकान भी बनवाते हैं, जिसका उन्होंने नाम दिया है —"स्वप्न गृह"।

भ्रष्टाचारी अफसर कहाँ नहीं होते? उच्च जाति के अफसर भी भ्रष्टाचारी हो सकते हैं, परन्तु जब कोई निम्न जाति का व्यक्ति अफसर बन जाता है, तब वह सबको काँटे की तरह खटकने लगता है। अतः भीतर ही भीतर उसके सामने एक चक्रव्यूह रचा जाता है जिसमें अन्ततः उसको फँसाया जाता है। पद्मनाभन के साथ भी यही घटित होता है। किसी भ्रष्टाचार या घोटाले को लेकर एक जाँच समिति का गठन होता है, जिसमें एक के बाद एक उनके भ्रष्टाचार की बातें खुलती जाती हैं और उनको उस पद से हटा दिया जाता है। प्रथमतः उनको उन प्रभाव और सुविधाओं से वंचित कर दिया जाता है जो उन्हें उस पद के कारण प्राप्त हुई थी। जब अदालत में मुकदमा चलता है, तो उन्हें सजा भी होती है और उसके कारण उनको नौकरी से भी हाथ धोना पड़ता है।

(24) सबसे बड़ा छल :---

मधुकर सिंह द्वारा प्रणीत प्रस्तुत उपन्यास में दलित वर्ग का चित्रण यथार्थतः हुआ है। बिहार में दलित चेतना के उभरने के साथ आगजनी

हत्या काण्ड की जो लोमहर्षक घटनाएं होती रहती हैं उसका यथातथ्य चित्रण यहां हुआ है । पारसबिगा कांड तथा बलछी कांड और हाल ही में हुये रणवीर सेना के कांडों से यही भलीभांति प्रतिफलितxx होता है । यहां यह तथ्य ध्यान में रहे कि दलित जातियों और ऊंची जातियों के बीच का यह संघर्ष स्वार्थ प्रेरित नहीं, अपितु उनके संघर्ष की लड़ाई है । बिहार में आर्थिक सत्ता आज भी जमींदारों के पास है । अतः श्रम पर जीने वाला सर्वहारा दलित वर्ग यहां बुरी तरह से पीसा जा रहा है । उनके नागरिक अधिकारों को कुचलने के व्यवस्थित षडयंत्र चलते रहते हैं । दलित जातियों के शोषण के लिए जाति व्यवस्था को कायम किया था और उसे धर्मसम्मत और समाज सम्मत बनाने का शास्त्र सम्मत मार्ग खोजा गया था । आज के प्रजा - तंत्र के युग में भी सवर्ण समाज उसे बनाये रखना चाहता है । और उस हेतु वे तरह-तरह के प्रयत्न कर रहे हैं । इसका चित्रण इस उपन्यास में हुआ है । उपन्यास में एक स्थान पर कहा गया है --" छोटी-बड़ी जातियों के बीच जमकर लड़ाई चल रही है । छोटी जातियों के पास कुछ भी नहीं है । जमीन मकान, घर, थाना, पुलिस, बी.डी.ओ. शहर, कचहरी सब जगह उनके अपने लोग हैं । यहां तक कि गांव में आने जाने का रास्ता भी उनके लिये बंद कर दिया गया है ।" [113] गांव में चौधरी बेला सिंह का अखंड साम्राज्य है । उनकी मरजी के खिलाफ एक पत्ता भी नहीं हिल सकता । राग दरबारी के वैद्य जी की भांति वे भी गांव के सर्वेसर्वा हैं । परन्तु वैद्य जी जहां अपनी धूर्तता और कांइयांपन से यह सब करवाते हैं, वहां बेला सिंह मनियावर और मसलपावर से उत्पन्न आतंक द्वारा यह काम करवाता है । बलदेव, देवनाथ, बुटाई सिंह जैसे कुछ पात्र हैं जो नयी चेतना के प्रतिनिधि हैं । बलदेव तथा बुटाई सिंह को चौधरी अपने छल-छद्मों द्वारा परास्त करते हुए समाप्त कर देता है, देवनाथ को विषम परिस्थितियों में जूझना पड़ता है ।

बिहार में लठैतों के बल पर दलित वर्ग के लोगों को उनके मूलभूत मताधिकार के हक से कैसे वंचित किया जाता है, इस कटु एवं वास्तविक

सत्य का चित्रण उपन्यास में इस प्रकार हुआ है --" चुनाउ के दिन जो भी चमार, दुसाध , मियां, बढ़ई, लुहार, कहार हैं सबके घर जंजीर चढ़ा दो । जो भी बलदेव के लिए वोट मांगने आये उनका सिर उतार लो ।" 114

सम्पत्ति और संपति द्वारा प्राप्त सत्ता के मद में गांव के सामर्थवान सवर्ण मदान्ध हो जाते हैं और वे न केवल दलित वर्ग का आर्थिक शोषण करते हैं , अपितु उनकी इज्जत अस्मत से खेलते हुए उनकी अस्मिता को नष्ट करने की चेष्ठा करते हैं । डर और आतंक के कारण बहुत से लोग चुप्पी लगा जाते हैं । चौधरी बेला सिंह गरीब नाथू चमार की बेटी को दिन दहाडे उठवा लेता है । उसके मां-बाप डर के मारे कुछ नहीं कर पाते । समझ लेते हैं कि बेटी मर गयी और रो-कलप कर चुप हो जाते हैं ।

चौधरी बेला सिंह के इस प्रकार के अत्याचारों के कारण तथा बलदेव और बूटाई सिंह के प्रोत्साहन के कारण दलित जाति के लोग संगठित होते हैं । अहीर, चमार, दुसाध, ओईरी आदि जाति के लोग बुटाई सिंह के साथ हो जाते हैं । भाला और आथों में हंसा लेते हुए लोग चौधरी के खेतों की ओर चल पड़ते हैं और अनीति पूर्वक बोई गयी उनकी फसल को काट लेते हैं । गांव के लोगों में आई इस क्रांति की चेतना के कारण बेला सिंह उस समय तो कुछ नहीं कर पाता और मनमसोज कर रह जाता है । परन्तु एक महीने के बाद योजना बद्ध तरीके से वह उसका प्रतिशोध लेता है । मूसहरों , दुसाधों और चमारों की बस्ती में वह आग लगवा देता है । इस इस आगजनी में एक दुसाध और उसका पांच साल का लड़का जलकर मर जाता है । दर्जनों परिवार बेघर हो जाते हैं । हरिजन टोला के कई घर जलकर राख हो जाते हैं और चौधरी बेलासिंह इस काण्ड में बलदेव को फंसा देता है ।

चौधरी जानता है कि दलितों की शक्ति और संगठन का श्रोत है बुटाई सिंह । अतः वह बुटाई सिंह की हत्या करवा देता है और उस काण्ड में देवनाथ को फंसा देता है । इस प्रकार सत्ता और संपत्ति के बल पर पुलिस और अधिकारियों को अपने पक्ष में करते हुए बेला सिंह पुनः अपने

आतंक का साम्राज्य स्थापित करने में सफल होता है । इस प्रकार प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने दलित चेतना को उभारा है, परन्तु इस चेतना को कुचल दिया जाता है और उपन्यास के अन्त में पुनः एक निराशाजनक और विवशतापूर्ण स्थिति दृष्टिगोचर होती है । लेखक ने वास्तविकता का चित्रण किया है और वास्तविकता यही है , किन्तु उपन्यास में यह संकेतित हुआ है कि बलदेव और बुटाई सिंह जैसे लोगों द्वारा उत्प्रेरित इस चेतना को कुछ समय के लिये तो कुचला जा सकता है परन्तु बाद में बुटाई सिंह जैसे लोगों का स्थान दूसरे ले सकते हैं और तब यह क्रान्ति-यात्रा आगे बढ़ सकती है ।

§25§ सोनभद्र की राधा :---

"सोनभद्र की राधा" मधुकर सिंह का दूसरा उपन्यास है जो दलित चेतना से सम्बद्ध है । इस उपन्यास का नायक गोबिन जाति से चमार है । गांव के ब्राह्मण जाति के नागेसर मिसिर की कन्या अनुराधा गोबिन से प्रेम करती है और उसे मनसा वाचा कर्मणा अपना पति मानती है । इतना ही नहीं इस संकल्प को वह बार-बार दोहराती भी है । अनुराधा और गोबिन एक साथ विद्यालय में पढ़ते थे । अनुराधा मानती है कि उसकी जिंदगी गोबिन की धरोहर है । क्योंकि गोबिन ने उसे दो - बार बचाया था -- एक बार नदी में डूबने से और दूसरी बार एक विषधर सर्प से । इन घटनाओं के कारण अनुराधा गोबिन को अपना भावी पति मानने लगती है । वह यह बात सरेआम कहती भी है । इसके परिणाम स्वरूप गोबिन अध्यापक का कोपभाजन बनता है और विद्यालय छोड़ने पर उसे विवश होना पड़ता है । नागेशर मिसिर के यहां-वहां हलवाहे का काम करता है । उसके पहले गोबिन के पिता नागेसर मिसिर के हलवाहे थे । गोबिन विद्यालय तो छोड़ देता है पर अनुराधा के बहुत कहने बुझाने पर परीक्षा अवश्य देता है ।

गोबिन के गांव बनगांव में दसहरे के समय रामलीला मंडली आती आती है । मंडली का महंत गोबिन की सुंदरता से प्रभावित होकर उसे अपनी मंडली में लेना चाहता है । गोबिन पहले तो राजी नहीं होता परंतु महंत को गोबिन और अनुराधा के प्यार की सूचना मिल जाती है । महंत इस बात से फायदा उठाते हुए येनकेन प्रकारेण गोबिन को अपनी मंडली में सामिल होने के लिये राजी कर लेता है । मंडली जब दूसरे गांव में जाती है तो वहां गोबिन की जाति छिपाई जाती है । गोबिन को राम-सीता की भूमिकायें भी दी जाती है । सामान्य तौर पर दलित वर्ग के लोगों को इस प्रकार की भूमिकायें नहीं मिलती । जमनापुर नामक गांव में गोबिन के कारण यह मंडली बहुत जमती है और उसकी ख्याति दूर-दूर तक फैलती है ।

गोबिन में काव्य-प्रतिभा भी थी । वह कवित्त और पदों की रचना कर लेता था । अपनी कवित्व शक्ति के आधार पर वह जमनापुर नवयुवकों में परिवर्तन लाने की चेष्टा करता है । आगे चलकर जमनापुर को ही अपना कार्य-क्षेत्र बना लेता है । अनुराधा गोबिन के प्यार में दिवानी होकर जमनापुर पहुंचती है और गोबिन से विवाह कर लेती है । इस प्रकार प्रस्तुत उपन्यास एक भावुक-रोमांश की कहानी बन कर रह जाता है । अनुराधा और गोबिन को विवाह के लिए अधिक संघर्ष नहीं करना पड़ता । एक तरफ उपन्यास में लेखक ने समाज में व्याप्त ऊंच-नींच की भावना को उजागर किया है, परन्तु दूसरी तरफ वर्ग-संघर्ष की स्थितियों से लेखक स्वयं को बचाता है । यह उसकी कमजोरी है । कुल मिलाकर प्रस्तुत उपन्यास को एक आदर्शवादी उपन्यास कह सकते हैं जिसमें एक ब्राह्मण कन्या चमार - युवक का पति के रूप में वरण करती है ।

§26§ सीताराम नमस्कार :---

मधुकर सिंह का प्रस्तुत उपन्यास भी दलित जीवन को कतिपय

समस्याओं को सामने लाता है । इसमें अर्थ-सत्ता और धर्म-सत्ता के संगठन को बताया गया है । सत्ता, धर्म और धन का गठबंधन और उप कुंडली मारकर बैठे हुए गिने-चुने लोग अपने निहित स्वार्थों के लिए किस प्रकार सामान्य मनुष्य को कीड़े-मकोड़ों की त तरह रौंदते हैं इसका यथार्थ चित्रण यहां हुआ है । उपन्यास में विधायक बनवारी सिंह और सीताराम पाण्डे सामंती जीवन प्रणाली के पक्षधर हैं । बनवारी सिंह सामंत वर्ग का व्यक्ति है और राजनीति में भी वह उसी सामंतवाद को पुनः स्थापित करना चाहता है । लक्ष्मण पुर गांव में वह अपना बर्तन का कारखाना लगवाना चाहता है । इस कारखाने के लिये वह चमार टोले को उजाड देता है । गांव के कुछ नव - युवक जब इस बात का विरोध करते हैं तो सीताराम पाण्डे उन्हें नौकरी का लालच देकर फुसला लेता है अतः नवयुवकों की टोली भी उनके साथ हो जाती है । सीताराम स्वयं उन नवयुवकों के साथ पेट्रोमैक्ष लेकर जाता है और चमार टोले पर ट्रैक्टर टिलवा देता है । विधायक बनवारी सिंह की मनमानी को वह सरकारी हुक्म घोषित करता है और लोगों को बताता है, यह तो सरकार का आदेश है । उनको वहां से भगा दिया जाता है तो वे लोग गांव के बाग में जाकर अपना डेरा डालते हैं । [115]

पेट की आग मनुष्य को कितना लाचार बना देती है उसका यथार्थ चित्रण प्रस्तुत उपन्यास में हुआ है । कारखाने के कारण जो लोग बेघर हो गये थे और जिनमें इस बात को लेकर क्रोध और प्रतिशोध की भावना थी वे लोग भी अन्ततः बनवारी सिंह की उस कारखोन में मजदूरी करने जाते हैं । जाडे के दिनों में जब शीत लहर चलती है, तब यह श्रमिक लोग अपने प्राणों की रक्षा के लिये कारखाने की शरण लेते हैं । उस समय बनवारी सिंह का बड़ा लडका कुछ लठैतों को लेकर आता है और उनको वहां से खदेड़ने के लिये लाठियां चलाता है । वह स्वयं बंदूक की गोली से सुक्खू नामक चमार की हत्या कर देता है । [116]

बनवारी सिंह को उसके तमाम अन्यायपूर्ण कार्यों में सीताराम

पाण्डे का सहयोग मिलता है । सीताराम पाण्डे एक ऐसा व्यक्ति है जो अपनी स्वार्थपूर्ति के लिये कुछ भी कर सकता है । स्वार्थ एवं कामलिप्सा के कारण समस्त नैतिकता को ताख पर रखकर यह बनवारी सिंह की कठपुतली जाता है । जिस प्रकार सूखता हुआ तालाब का मोतीराम अपनी "भदंउ" से वासनात्मक सम्बन्ध रखता है उसी प्रकार सीताराम पांडे अपनी वासना - पूर्ति हेतु अपनी "पतोहू" को ☒ फंसाता है उसके लिए वह प्रलोभनों की एक जाल बिछा देता है । उपन्यास में चनर ठाकुर का एक पात्र आता है जो इस सर्वहारा वर्ग का पक्षधर है और उनको संगठित कर अन्याय का प्रतिकार के लिये उन्हें प्रोत्साहित करता है । चनर ठाकुर , बनवारी सिंह और सीताराम पाण्डे दोनों के लिये एक खतरा प्रमाणित होते हैं । अतः इस कौटे को निकालने के लिये सीताराम पांडे अपनी कपट जाल बिछाता है । वह बुलाकी नामक एक चमार की हत्या करवा देता है । और उसी अपराध में चनर ठाकुर को फंसा देता है । चनर ठाकुर को जेल हो जाती है । [117] चनर ठाकुर के☒ जेल चले जाने पर दोनों का रास्ता निष्कंटक हो जाता है और ये खुलकर दलित वर्ग के लपेटों पर अपने अत्याचारों का सिलसिला शुरू कर देता है ।

सीताराम पाण्डे उपन्यास का खल नायक है । बनवारी सिंह के साथ साठगांठ करके वह अपनी सत्ता की धाक जमा देता है । धन और सत्ता के इस गठबंधन के कारण लक्ष्मणपुर क्षेत्र में कोई भी व्यक्ति सीताराम पांडे के खिलाफ बोलने का साहस नहीं जुटा पाता है । परन्तु इसी सीता-राम को मैना के आगे हार माननी पड़ती है । मैना एक पक्षी है और उपन्यास में उसका पात्र के रूप में चित्रण हुआ है । मुझे चांद चाहिए के तोते की भांति यह मैना भी मनुष्यों की भाषा में बात करती है । मैना सीताराम के करतूतों का कच्चा चिट्ठा लोगों के आगे खोल देती है और इस प्रकार सीताराम को सबके सामने नंगा कर देती है ।

प्रस्तुत उपन्यास में दलित वर्ग का चित्रण सर्वहारा वर्ग के रूप में

हुआ है । साधन सम्पन्न लोग इस वर्ग को कैसे प्रताडित करते रहते हैं, उसका मर्मस्पर्शी चित्रण यहां हुआ है । गैर कानूनी तरीकों से दलितों की जमीन कारखाने के लिए हडप ली जातीहै और कोई उनका कुछ बिगाड नहीं सकता । उपन्यास में औद्योगिकीकरण के दुष्परिणामों को भी रेखांकित किया गया है । उपन्यास इसे भलीभांति रेखांकित किया गया है कि दलित लोग कीड़े-मकोड़े की तरह हैं उनकी जान की कोई कीमत नहीं है और कोई भी व्यक्ति उन्हें भेड़-बकरियों की तरह खदेड़ सकता है क्योंकि न्याय और पुलिस तक उनकी पहुंच नहीं है ।

§27§ छोटी बहू :---

दयाशंकर मिश्र द्वारा प्रणीत छोटी बहू उपन्यास में यद्यपि अनमेल विवाह की समस्या को केन्द्र में रखा गया है , तथापि उसमें दलित समस्या और वेश्या समस्या को भी संम्मिलित किया गया है । तरूणी छोटी बहू का विवाह शेठ चुनीलाल के साथ हो जाता है । शेठ चुनीलाल बुढ़ापे की दहलीज पर पहुंचा हुआ एक शेठ है, उसका एक पैर तो कबर में लटक रहा है और ऐसी उम्र में अपनी बेटी-सी उम्र की तरूणी के साथ वह विवाह करता है । इस विवाह के उपरांत जो समस्याएं उत्पन्न होती हैं, उन्हें यहां यथार्थवादी ढंग से प्रस्तुत किया गया है । इस प्रकार प्रस्तुत उपन्यास की केन्द्रस्थ समस्या तो अन्मेल विवाह की समस्या है । इस अनमेल विवाह के पीछे गरीबी कारणभूत है । तगड़ा दहेज देने में असमर्थ मां-बाप अपनी बेटियों के ब्याह ऐसे बड़े-बूढ़ों से कर देते हैं । नवजागरण काल के तथा प्रेमचन्द काल के अनेक उपन्यासों में इस समस्या को निरूपित किया गया है ।

परन्तु प्रकारान्तर से इस उपन्यास में दलित जीवन से जुड़ी हुई छुआछूत की समस्या को भी लिया गया है । उपन्यास में इस समस्या का निरूपण सिंघाडो नामक एक डोम युवती के पात्र के कारण हुआ है ।

सिंघोड़ा के पिता डोम जाति के थे परन्तु उसकी मां ब्राह्मण

की बेटी थी । इस अन्तर्जातीय विवाह के कारण सिंघाडो के मां को आजीवन प्रताडित किया गया । मानसिक यंत्रणाओं के कारण वह असमय ही दम तोड देती है । उच्च वर्गीय लोग सिंघाडो की मां के इस अनुपयुक्त (उनकी समझ के अनुसार) कार्य की सजा सिंघाडो को भी देना चाहते हैं ।

गांव का नवयुवक सिंघाडो को अपनी मुंह बोली बहन बनाता है । वह सिंघाडो का उद्धार करना चाहता है। परन्तु पुलिस उसे वेश्या वृत्ति के झूठे मुकदमें में फंसा देती है । उसे दो साल की सजा हो जाती है । दो वर्ष के बाद जब वह जेल से बाहर निकलता है और सिंघाडो की खोज - खबर लेता है तो ज्ञात होता है कि लोगों ने उस पर जो लांछन लगाये थे उसके कारण सिंघाडो ने आत्महत्या कर ली थी ।

उपन्यास में छुआछूत की समस्या को भी रेखांकित किया गया है । एक स्थान पर सिंघाडो कहती है --" मेरे बापू जाति के डोम थे और मां बामन की बेटी । लेकिन जाति तो बाप की जाति पर ही मानी जायेगी । सो डोम की लड़की को अपने चौके में झांकने देगा कोई ?" 118

गांव के ऊंची जाति के लोग वैसे छोटी-छोटी बातों में छुआ - छूत मानते है हैं परन्तु अछूत जाति की लडकियों और स्त्रियों के साथ यौन सम्बन्ध जोड़ने में उन्हें छुआछूत की बिमारी नहीं लगती । इस सन्दर्भ में सिंघाडो कहती है --" जो लोग हमें अछूत कहकर अपने घर में नही आने देते हमें छूकर स्नान करते हैं, जहां हमारा पैर पड़ जाता है उस जगह पर पानी छिड़क कर पवित्र कर लेते हैं । सो वहां वही आकर मेरे होठों पर होठ कैसे रख देते हैं । तब उनकी जाति क्यों नहीं बिगड़ती ?" 119

सिंघाडो के पिता इस ऊंच-नीच और छुआछूत के भेद को नहीं मानते थे , इसीलिए तो डोम होते हुए भी उन्होंने ब्राह्मण कन्या से विवाह किया था । सिंघाडो के पिता मानते हैं कि डोम होने से क्या होता होता है, आबरू थोड़े ही बेचनी है । अत: वे अपनी लड़की को सामान बेचने के लिये कभी किसी बड़े आदमी के कोठे पर नहीं भेजते थे । परन्तु उनकी

मृत्यु के बाद सिंघाडो को यह सब करना पड़ता है। लोग गिन-गिन कर बदला लेते हैं। सिंघाडो अपने मुंहबोले भाई राजेन्द्र से एक बार कहती है --" बाबू ! हमारे लोगों की जवान लड़कियां कभी-कभी बड़े घरों में जाकर आबरू बेंच आती हैं या वे कोठियों वाले ले लेते हैं। आबरू तो एक बार गयी सो गई, फिर रोने धोने से कुछ होता नहीं। एक बार गयी तैसी हजार बार गयी। इसलिए जब तक बापू रहे, उन्होंने मुझे किसी कोठे में सामान बेचने के लिये नहीं भेजा।" [120]

इस प्रकार प्रस्तुत उपन्यास के द्वारा लेखक यह प्रमाणित करता है कि जातिवाद और ऊंच-नींच की समस्या, छुआछूत की समस्या हमारे समाज में गहरे तक घुसी हुई है, शहरों में इसे कम देखा जा सकता है परन्तु दूर-दराज के गांवों में यह समस्या आज भी मुंह फाडे खड़ी है। राजेन्द्र और सिंघाड़ो के पिता जैसे कुछ इक्के-दुक्के लोग इसके खिलाफ संघर्ष करते है, तो उन्हें मुंहकी खानी पड़ती है, इतना ही नहीं उनसे जुड़े लोगों को भी घोर यातना और यंत्रणाओं से गुजरना पड़ता है, जिसे हम सिंघाडो और उसकी मां के संदर्भ में दृष्टिगत कर सकते हैं।

(28) एकलव्य :---

चन्द्र मोहन प्रधान द्वारा प्रणीत यह उपन्यास पौराणिक महाभारत कालीन एकलव्य की गाथा को, मूल कथा में अधिक परिवर्तन किये बिना, आज की राजनीतिक स्थितियों का लेखा-जोखा प्रस्तुत करता है। किसी भी भाषा या किसी भी कालखण्ड में साहित्य की रचना जब होती है तो उसमें असंदिग्ध रूप से अपने समय के प्रश्न एवं दबाव मौजूद रहते हैं। साहित्य में चाहे जीवन के यथार्थ का पुनर्सृजन हो या इतिहास का पुनर्लेखन उसमें समकालीनता का दबाव हमेशा मौजूद होता है। प्रस्तुत उपन्यास अपने ऐतिहासिक एवं आख्यानमूलक चरित्र एवं विवरण के बावजूद हमारे समय एवं उसके सवालों से उतना ही जुड़ा हुआ है, जितना कि कोई यथार्थवादी [illegible]-

सामाजिक उपन्यास या नाटक । [121]

चन्द्र मोहन प्रधान का यह उपन्यास लगभग दो सौ पृष्ठों तथा चार अलग-अलग खंडों में विभाजित है । महाभारत कालीन एकलव्य की कथा जग-विश्रुत है । निषादराज हिरण्यधनु के पुत्र एकलव्य के मन में धनुर्विद्या सीखने की ललक शुरू से ही थी । एक स्थान पर वह कहता है—" मैं दीर्घ-काल से विचार कर रहा हूं कि स्वयं किसी प्रकार धनुर्विद्या में दक्षता प्राप्त कर अपने निषादों का संगठन करूं । उन्हें अजेय बनाऊ, उनका व्यापार वाणिज्य बढ़े , वे समृद्ध हों । वे किसी राजा के प्रभाव मंडल के अधीन होकर न रहे । मात्र वनवासी बने एक कोने में पड़े रहने के स्थान पर वे आर्यावर्त की राजनीति के स्तंभ बनें ।" [122]

अपनी इस महत्वाकांक्षा के कारण एकलव्य अपने समय के प्रसिद्ध धनुर्विद्या के आचार्य द्रोण के पास धनुर्विद्या सीखने के लिए जाता है परन्तु द्रोणाचार्य राजनीतिक दबावों के कारण उसे धनुर्विद्या सिखाने से मना कर देते हैं । आचार्य द्रोण के मना करने पर प्रथमतः एकलव्य बहुत निराश होता है, परन्तु वह हिम्मत नहीं हारता है । गुरू द्रोण की प्रतिमा स्थापित कर उस प्रतिमा के सन्मुख वह धनुर्विद्या का अभ्यास करता है । कई-कई तरीकों से ~~बसम~~ बाण-सन्धान करता है और अन्ततोगत्वा उसमें सिद्धहस्तता प्राप्त कर लेता है ।

एकलव्य की परंगतता के संदर्भ में गुरू द्रोण जब अवगत होते हैं तब उनको अपने प्रिय शिष्य अर्जुन की चिंता सताने लगती है । अर्जुन के प्रति उनका जो मोह और~~ख~~ दबाव था, उसके कारण गुरू द्रोण गुरूदक्षिणा में एकलव्य से दायें हाथ का अंगूठा मांग लेते हैं । ~~एकलव्य/के~~ दायें हाथ के अंगूठे का धनुर्विद्या में कितना महत्व है, यह कहने की आवश्यकता नहीं है । इस प्रकार जातिगत दबावों के तहत एकलव्य की प्रतिभा को बलिवेदी पर चढ़ा दिया जाता है । इस प्रसंग के सन्दर्भ में मेरे निर्देशक डॉ० पारूकान्त देसाई जी का एक दोहा ~~ब~~ स्मृति में कौंध रहा है ---

"शंबूक मारा राम ने, शूद्र करै तप कौन ।
भील क्यों आगे आयेगा, काटे अंगूठा द्रोण ।।" 123

ऐसा प्रतीत होता है कि हमारे साम्प्रत समाज में भी कुछ ऐसे द्रोण हैं, जो आज भी एकलव्यों का अंगूठा काटने के लिए आमादा हैं । एकलव्य की सारी तैयारी एवं लड़ाई तत्कालीन राजनीतिक परिवेश में अपने उपेक्षित वर्ग एवं समुदाय को उचित स्थान एवं सम्मान दिलाने की थी । कमोबेश रूप में एकलव्य की यह लड़ाई आज की हमारी भारतीय राजनीति के परिप्रेक्ष्य में भी उतनी ही प्रासंगिक कही जा सकती है । उपन्यास में एक स्थान पर कृष्ण कहते हैं --" आर्यावर्त के राजनीतिक शासन की मूलधारा का निर्माण अब तक ब्राह्मण-क्षत्रिय दो ही जातियां लिये हुए थी । अब तुम देखोगे, यादव और इतर जातियां भी अपनी अनिवार्यता पूत्र के सन्दर्भ में पहचानने लगी हैं । सुदूर पूर्वांचल के यादवों को असंस्कृत, हीन आर्येतर माना जाता रहा है । वे भी स्वयं को प्रमाणित करने के लिए व्याकुल हैं । उनका नेतृत्व अभी जरासंघ के हाथों में है, जो अहंकारी, दिग्भ्रमित और क्रूर व्यक्ति है । तथापि पूर्वांचल के व्रात्यों को महत्व इससे कम नहीं होता । उनमें धन, जन, सामरिक शक्तियां हैं । वे निःसन्देह अपना स्थान बनाएंगे । कालांतर में संभवतः हस्तिनापुर से भी बृहत सत्ताकेन्द्र बन जाए मगध ।" 124

अब "एकलव्य" के बहाने वर्तमान के उस सवाल पर जरा विचार कर लिया जाये जो इधर लगातार उठाया जा रहा है, हिन्दी साहित्य में दलित- लेखन का जो दौर आया है और दलित-लेखकों की जो एक भरी - पूरी पीढ़ी आई है उसने हमारे सामने कई सवाल उछाले हैं एवं हमें कई मुद्दों पर सोचने को विवश किया है । एक सवाल "एकलव्य" के संदर्भ में प्रासंगिक है कि शिक्षा एवं साहित्य पर सदियों से जिन वर्गों का प्रभुत्व रहा है, उन्होंने दूसरे वर्गों (पिछड़ों एवं दलितों) की उपेक्षा की है और सारे लाभ अपने हित में साधे हैं । अभी-अभी दलित लेखक- कवि ओमप्रकाश बाल्मीकि की आत्मकथा "जूठन" आयी है । उसमें उन्होंने यह बताया है कि कैसे उनके

शिक्षक, जो सवर्ण वर्ग के थे , उनकी उपेक्षा एवं अपमान किया करते थे । उनकी "एकलव्य" की समस्या भी थी शायद यही है । "द्रोण" इस समय के श्रेष्ठतर गुरू हैं, किन्तु धर्मच्युत हैं ।" और आर्यावर्त के भावी राजाओं के पूज्य गुरू और मार्ग-दर्शक जब द्रोण सरीखे होने लगे, तो भविष्य की कल्पना ही की जा सकती है * ...।" [125] शिक्षक के व्यक्तित्व के अन्तर्विरोध एवं शिक्षा पर * खास व्यक्ति एवं वर्ग के वर्चस्व और उसकी विडम्बना को रेखांकित करती है । "एकलव्य" कभी जिस प्रश्न से जूझा था , उस प्रश्न से आज भी कहीं-न-कहीं दलित एवं जनजाति वर्ग का व्यक्ति जूझ रहा है , क्योंकि शिक्षा एवं सत्ता पर जिनका प्रभुत्व है या रहा है, वह किन मूल्यों एवं सिद्धान्तों का पाठ पढ़ा रहे हैं -- यह विचारणीय है । एक तरह से "एकलव्य" की समकालीनता इस रूप में भी है । कुल मिलाकर "एकलव्य" में इतिहास और वर्तमान, दोनों की उपस्थिति एवं दबाव पूरी तरह मौजूद है -- यह उपन्यास को निरंतर पढ़ते हुए लगता है ।

*** * अन्य उपन्यास :----**

पूर्व-विवेचित उपन्यासों के अतिरिक्त ऐसे कई उपन्यास मिलते हैं, जिनमें दलित-विमर्श किसी-न-किसी तरह उकेरित हुआ है । शैलेश मटियानी के प्रायः सभी ग्रामभित्तीय उपन्यासों में दलितों की चर्चा हुई है तथापि उनके "रामकली, गोपुली गफूरन किस्सा नर्मदा बेन गंगूबाई तथा चंद औरतो का शहर, जैसे उपन्यासों में दलित जीवन के कई-कई चित्र उपलब्ध होते हैं । "रामकली" में तथाकथित अभिजात वर्गीय लोग पिछड़ी जाति की स्त्रियों का नैतिक शोषण किस प्रकार करते हैं यह बताया गया है । "गोपुली गफूरन " की गोपुली एक शिल्पकारिन है । उसकी जवानी और नाज-नखरों पर अलमोड़ा शहर के कई दिल फेंक व्यापारी कुरबान होने को तैयार हैं और गोपुली भी अपनी जवानी और सौंदर्य के जादू का भरपूर उपयोग करती है । परन्तु स्थिति की विडम्बना यह है कि उसके पति की

मृत्यु पर उसकी सहायता के लिए उसकी जाति-बिरादरी का कोई भी व्यक्ति आगे नहीं बढ़ता है । उसे भोगने के लिए तो सभी की लार टपकती थी, परन्तु जब उसे सचमुच के अवलंब की आवश्यकता हुई , तब कोई भी माई का लाल आगे नहीं आया । वस्तुतः यह लोग गोपुली के पति की आड़ में वासना का खेल खेलना चाहते थे और तब अपने दो बच्चों की परवरिश के लिए वह अपनी छाती पर पत्थर रखकर गफूर मिंया के घर में बैठ जाती है । सभी सधर्मी लोग जब किनारा कर जाते हैं तब एक विधर्मी ही उसकी मदद करता है । हिन्दू स्त्रियों के धर्म-परिवर्तन का एक नया आयाम यहां परिलक्षित होता है । प्रस्तुत उपन्यास में मथुरा पंडित ठीक ही कहता है --" गोपुली अगर मुसलमानी हो गई है, तो ये कसूर इस बेगुनाह औरत का नहीं है - हम पत्थर दिल और अपनी ही बेटियों को आसरा देने में नाकाम हिन्दुओं का है । इस बेगुनाह और जद्दोजहद की जिंदगी को भी प्यार से बसर कर देने वाली ममता से लबरेज औरत पर झूठा दावा कायम करके रतनराम ने हम ~~हिन्दुओं~~ हिन्दुओं की कमनियति का सबूत दिया है । ... ये तो इस लड़की की खुशकिस्मती है कि सआदत हुसैन जैसा नेक आदमी इसे मिल गया, नहीं तो हम पहाडियों की गरीबी और बेरहमी की मारी जाने कितनी बेटियां कहां-कहां मारी-मारी फिर रही हैं ।" [126]

"किस्सा नर्मदा बेन गंगूबाई" की गंगूबाई घाटन (दलित जाति की स्त्री है । नर्मदा बेन सेठानी को जब ज्ञात होता है कि वह जिसे प्रेम करती है वह करसन गंगूबाई का प्रेमी है, तब वह गंगूबाई को रूपये - पैसे की लालच देती है * करसन को छोड़ने के लिए । परन्तु गंगूबाई सेठानी द्वारा दिये गये नोटों के बंडल को पलंग पर रखते हुए जबाब देती है --. "सेठानी बाई, ही तुमची दोलत माका नको...या तुमचा बांदरा चा फ्लेट माका नको.. पण तो तुमचा करसन बाबू... तो माझा मनाचा मीत गोबिन्दा...भला फक्त तोच पाहिजे ।" [127] इस प्रकार यहां लेखक ने दलित स्त्री की प्रेम-भावना का निरूपण किया है ।

"चन्द औरतों का शहर" उपन्यास में वैसे तो उपन्यासकार ने

कई अन्य आयामों को लिया है, परन्तु उसमें भगतराम का चरित्र आया है, जिसका सम्बन्ध दलित जीवन से है । आजादी के बाद दलित जाति का एक तबका संवैधानिक फायदों को उठाते हुए काफी उन्नत स्थिति में आ गया है । भगतराम उनमें से एक हैं । भगतराम वैसे तो दलित जाति के हैं । उनकी मूल "सरनेम" तांबेकर थी , परन्तु तत्कालीन राजनीति से लाभ उठाते हुए वे राय बहादुर भगतराम हो जाते हैं । जो दबदबा केन्द्र में जगजीवन राम का था, ठीक उसी प्रकार का दबदबा भगतराम जी का अलमोड़ा शहर में था । भगतराम जी की एक पुत्री है-- चारूलता तांबेकर । उसके लिए राय बहादुर भगतराम एक उच्च जाति के महत्वाकांक्षी युवक को चुनते हैं , परन्तु आई.ए.एस. होकर डी.एम. हो.जाने पर वह युवक दोनों को चकमा दे जाता है, इतना ही नहीं वह चारूलता को अविवाहित स्थिति में ही गर्भवती बनाकर चला जाता है । बाद में भगतराम जी चारूलता का विवाह बलवीर नामक एक व्यक्ति से करते हैं, परन्तु वह किसी तरह चारूलता के योग्य नहीं है । चारूलता अब मिसेज बलवीर हो जाती है । परन्तु [illegible] दोनों में कोई मेल नहीं है । अतः वह बलवीर के खिलाफ चुनाव लड़ने के लिए भी तैयार हो जाती है । इस प्रकार दोनों के बीच का भीतरी विवाद बाहर प्रकट हो जाता है । मिसेज बलवीर एक पवित्र निष्ठावान और ईमानदार स्त्री है , परन्तु प्रेमवंचना के कारण वह कुछ अधिक " Out-Spoken " हो जाती है और उसके कारण उसे "Most Scandalous woman of the city " का तमगा मिलता है । यहां दलित जीवन का एक दूसरा आयाम हमें मिलता है ।

डॉ० शिवप्रसाद सिंह के उपन्यास "अलग-अलग वैतरणी" में लेखक ने स्वातंत्र्योत्तर ग्रामीण जीवन के बदलाव को रेखांकित किया है । आजादी के उपरांत राजनीति की काली आंधी ने गांवों को भी अपने चपेट में ले लिया है और अब गांव भी राजनीतिक प्रदूषण से अलिप्त नहीं रहे हैं । यह मुद्दा उपन्यास के केन्द्र में है , तथापि प्रकारान्तर से उपन्यास में कहीं कहीं दलित

जीवन के करूण चित्रण आये हैं । करैता गांव के जमींदार जयपाल सिंह का पुत्र बुझारत सिंह अपने नौकर को बुरी तरह से पीटता है । यह नौकर दलित जाति का है । उसे न्याय दिलाने के लिए दलित जाति के लोगों की पंचायत दो-तीन बार मिलती है, परन्तु उसका कोई परिणाम आता नहीं है । लेखक ने यहां यह घोतित क्ष किया है कि गांव में दलित जाति के लोगों की स्थिति में कोई खास सुधार अभी तक हुआ नहीं है । बुझारत सिंह अपने नौकर की पत्नी सुगनी से भी अनैतिक सम्बन्ध रखता है । सुगनी के संबंध गांव के एक दूसरे जमींदार सुरजू सिंह से भी है । इस प्रकार क्ष यहां भी मैला आंचल की भांति अनैतिक यौन सम्बन्धों की हारमाला दृष्टिगोचर होती है ।

डॉ0 राही मासूम रजा कृत "आधा गांव" उपन्यास में मुसलमानों में जो दलित जातियों में आते हैं ऐसे जुलाहा वर्ग के लोगों का जीवन उपलब्ध होता है । गंगौली गांव के सैयद जमींदार इन निम्न जाति के लोगों का हर तरह से शोषण करते हैं । परन्तु लेखक ने इसमें आजादी के बाद के परिवर्तनों को भी रेंखांकित किया है । रहमद जुलाहा का बेटा बरकत अब अलीगढ़ यूनिवर्सिटी में पढ़ता है और सैयद जादे हूसेन अली मियां की लड़की से इश्क फरमाता है । हूसेन अली मिंया को यह अच्छा नहीं लगता और इस सन्दर्भ में वह फुन्नन मियां से शिकायती तौर पर कुछ कहते हैं, तब फुन्नन मियां जो कहते हैं वह बिलकुल ठीक है --" जब जमीदारियां रही तब तू कौनो जोर-जबरदस्ती न लिए रहयो । का ई हमें ना मालूम कि तू रहसतवा की बहन से फंसे रहयो ? तू जमींदार न रहे होत्यों, त का ओ तारी क्ष बहिनिया न चोद देता ? कल तोरा बखत रहा, आज बरकतवा का बखत है ।" [128] इस प्रकार परम्परावादी समाज का स्थान लेने वाले सामाजिक तत्त्वों को भी लेखक ने बखूबी पहचाना है । सुखरमवा चमार का बेटा परसुरमवा अब एम.एल.ए. हो गया है । उसके पास पक्का मकान और जीप है । गंगोली गांव के सैयद जमींदार जो पहले छोटी जाति के लोगों को

हिकारत की नजरों से देखते थे, अब परसुराम को मान और इज्जत देने लगे हैं । अब सैयद जादे परसुराम के दरवाजे पर भी जाकर बैठने लगे हैं । रमजान जुलाहा भी चौक के सामने पक्का पाखाना बनवाता है । स्वाधीनता के उपरांत दलित जाति के लोगों में जो थोड़ा-बहुत परिवर्तन आया है उसे प्रस्तुत उपन्यास में चिन्हित किया गया है ।

बम्बई, दिल्ली, कलकत्ता जैसे महानगर अब चारों तरफ फैले रहे हैं । महानगरों के आसपास मीलों लम्बी झुग्गी झोपडियों की बस्तियाँ बसने लगी हैं । भीष्म साहनी कृत "बसंती" उपन्यास में हम दिल्ली की ऐसी जुग्गी झोपडियों की जिंदगी को देख सकते हैं । इन जुग्गी झोपडियों में बसे हुए लोग परचून जाति के होते हैं, परन्तु उनमें अधिकांश दलित वर्ग के लोग होते हैं । "बसंती" तथा "मुरदाघर" (जगदम्बा प्रसाद दीक्षित) में हमें दलित जीवन का नरक दृष्टिगोचर होता है ।

इधर सन् 1998 में रामधारी सिंह दिवाकर का एक उपन्यास आया है, जिसमें दलित जीवन के एक नये आयाम को उकेरा गया है । उपन्यास का नाम है —" आग-पानी आकाश" । इस उपन्यास में हम देख सकते हैं कि सर्वहारा के भीतर भी एक सामन्त बैठा हुआ है । आजादी के बाद लोकतांत्रिक व्यवस्था, शिक्षा एवं राजनैतिक चेतना के प्रसाद के फलस्वरूप दलित वर्ग का एक हिस्सा शिक्षित, सुविधा सम्पन्न और सत्ता का भागीदार बनता गया है । आजादी के पूर्व शिक्षा एवं सत्ता में इस वर्ग की भागीदारी नहीं के बराबर थी, लेकिन आजादी के बाद लोकतांत्रिक व्यवस्था के चलते निचले तबके में बहुत धीरे-धीरे ही सही पर एक परिवर्तन की सुगबुगाहट सुनाई पड़ रही है । यह एक वास्तविकता है । प्रस्तुत उपन्यास में दलित वर्ग के प्रतिनिधि ऐसे बब्बन धोबी के जीवन को चित्रित किया गया है । बब्बन धोबी अपनी आर्थिक समस्याओं से जूझते हुए अपने दोनों बेटों को पढ़ाता है । बब्बन धोबी खास जमींदार परिवार का धोबी था । वह स्वयं को "राज-धोब" कहता है । उसका बड़ा बेटा भागवत पढ़-लिखकर ठेकेदारी का काम

करता है । और ठेकेदारी करते- करते वह काफी सम्पन्न औरख दबंग हो जाता है । तब उसका व्यवहार भी पुराने सामन्तों-सा हो जाता है । रेणु कृत "जुलुस" के तालेवर घोड़ी की भांति वह भी उच्च वर्ण की स्त्रियों के साथ अनैतिक सम्बन्ध जोड़ने में गौरव का अनुभव करता है । छोटा लड़का युगेसर पढ़-लिखकर भारतीय वित्त-विभाग में एक बड़ा अफसर बनने के बाद वह अपने ही वर्ग के लोगों से घृणा करने लगता है , इतना ही नहीं विवाह भी वह उच्च जाति की बंगला महिला कामना घोष से करता है । वैसे यह एक प्रगतिशील कदम है, लेकिन यहां कारण दूसरा है । युगेसर कामना घोष से विवाह जाति प्रथा को तोड़ने के लिए नहीं करता, वरन वह अपनी जाति तथा अपनी जाति की स्त्रियों को घृणा करता है, इसलिए यह कदम उठाता है । अतः इसे प्रगतिशील आयाम नहीं कह सकते । उपन्यास का यहां एक प्रश्न उजागर करना है कि दलित जिस सामन्ती सोच एवं जीवन शैली को झेलते और उसके खिलाफ लड़ते रहे हैं, यदि वे खुद उसी के शिकार हो जाएं तो उनकी लडाई का क्या होगा ? अतः प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने राम सजीवन नामक एक अन्य चरित्र को भी रखा है । रामसजीवन हरिजन वर्ग का है । रामसजीवन पढ़-लिखकर युगेसर की भांति अपनी दुनिया में कैद नहीं हो जाता, बल्कि अपने वर्ग से जुड़ा हुआ रहता है एवं अपने परिवार एवं वर्ग के लिए निरंतर संघर्षरत रहता है । इस प्रकार प्रकारान्तर से लेखक यह प्रमाणित करता है कि दलितों के उत्थान के लिए युगेसर का नहीं अपितु रामसजीवन का रास्ता ही उपयुक्त है ।

इधर दलित लेखकों की कुछ कृतियां विशेष रूप से चर्चित रही हैं, इनमें ओमप्रकाश बाल्मीकि कृत"जूठन", मोहन दास नैमिसराय कृत "अपने-अपने पिंजरे" तथा भगवान दास कृत " मैं भंगी हूं" आदि कृतियां मुख्य हैं । परन्तु यह तीनों कृतियां "आत्मकथा" विधा में आयी हैं । अतः उनका समावेश प्रस्तुत प्रबंध में नहीं किया गया है । यह दीगर बात है कि इन आत्मकथाओं में जो तथ्य उजागर हुए हैं, उसके प्रकाश में दलित जीवन से

अनुप्राणित कथा साहित्य को देख जाना एक दिलचस्प बात हो सकती है । इन उपन्यासों के अतिरिक्त "शेखर एक जीवनी" सीधी सच्ची बातें, "सबहिं नचावत राम गोसाईं" ҉ भगवतीचरण वर्मा҉, "बीज" ҉अमृतराय҉, "परती परिकथा ҉फणीश्वरनाथ रेणु҉ "पत्थर के आंसू", "हजार घोड़ों का सवार", ҉यादवेन्द्र शर्मा҉, "सतीमैया का चौरा" ҉भैरव प्रसाद गुप्त҉, "लोहे के पंख, ҉हिमांशु श्रीवास्तव҉ "मानव-दानव" ҉मन्मथनाथ गुप्त҉, महापात्र ҉विश्वेश्वर҉, यथा प्रस्तावित ҉गिरीराज किशोर҉ प्रभृति उपन्यासों में भी दलित जीवन के कतिपय पक्षों को उजागर किया गया है।

---: निष्कर्ष :---

अध्याय के समग्रावलोकन से निम्नलिखित निष्कर्षों तक सहजतया पहुंच सकते हैं ---

1- स्वातंत्र्योत्तर काल में दलित चेतना से अनुप्राणित उपन्यासों की संख्या पर्याप्त मात्रा में पायी जाती है ।

2- प्रेमचन्द काल तथा प्रेमचन्दोत्तर काल ҉स्वाधीनता-पूर्व҉ में दलित जीवन का चित्रण प्रायः अदलित लेखकों द्वारा हुआ है ।

3- स्वातंत्र्योत्तर काल में अदलित लेखकों के साथ-साथ हमें कुछ दलित लेखकों की औपन्यासिक कृतियां भी प्राप्त होती हैं । कुछ दलित लेखक छद्म नामों और जातियों से भी लिख रहे हैं । यह एक अलग अनुसंधान का विषय है ।

4- मराठी में दलित साहित्य की जो अवधारणा और विभावना है, वैसी अवधारणा और विभावना अभी हिन्दी साहित्य में बन नहीं पाई है, तथापि कुछ लेखक इस दिशा में अग्रसर हैं ।

5- प्रस्तुत उपन्यासों में जहां एक ओर दलित जीवन की व्यथा-कथा उनकी पीड़ा, यंत्रणा और त्रासदी है, वहां दलित जाति के लोगों में से

उभरते हुए कुछ स्वर भी सुनाई पड़ रहे हैं जो भविष्य की दिशाओं को आलोकित कर रहे हैं ।

6- इन उपन्यासों के अध्ययन से यह फलित होता है कि दलित जातियों का शोषण उच्च वर्गीय लोगोंॐ ने तो किया ही है, उनके अपने लोग भी उनमें शामिल हैं । दलित वर्ग के जो लोग ऊपर उठ जाते हैं वे भी कई बार पुरानी सामन्त शैली के जीवन को अपना लेते हैं ।

7- दलितों के पिछड़ेपन के लिए अशिक्षा तथा असंगठन उत्तरदायी है ।

8- दलितों में पड़ी हुई लघुताग्रंथी की भावना कई बार उनकी प्रगति के मार्ग में बाधा रूप होती है ।

9- अंधविश्वास तथा पुराने जर्जर रूढ़ि-रिवाज भी दलित जीवन की प्रगति के मार्ग में बाधारूप हैं ।

*

<u>सन्दर्भ-सूची :--</u>

1- सूखे सेमल के वृन्तों पर - प्रो० पारूकान्त देसाई - पृ. 7।
2- संसद से सड़क तक : सुदामा पाण्डेय "धूमिल" : पृ. 48
3- ----- वही ---- पृ. 4।
4- द्रष्टव्य : इण्डिया टुडे, 17 दिसम्बर-1997 , लेख प्रतिशोध का दावानल : भरत देसाई : संजय कुमार झा : पृ. 36 से 38
5- द्रष्टव्य : मैला आंचल - फणीश्वरनाथ रेणु - पृ. ~~42-43~~ 10, 17, 20, 160
6- मैला आंचल- फणीश्वरनाथ रेणु - पृ. 62-63
7- --------- वही ---- पृ. 156

8- मंगलादेय : ब्रजभूषण : पृ. 21

9- लेख : कुजात : लेखक "उग" : भंवदेव पाण्डेय : हंस : सितम्बर -99 पृ. 59

10- नदी के मोड़ पर : दामोदर सदन : पृ. 126

11- -------- वही --- पृ. 126

12- -------- वही ----पृ. 192

13- संस्कृत कोलंबस नो जमानो : गुणवंत शाह द्वारा लिखित "आपणे प्रवासी पारावार नां" में काका साहेब कालेलकर द्वारा लिखित भूमिका से : पृ. 11, गुजराती से हिन्दी रूपान्तर ।

14- मोतिया - राम कुमार भ्रमर : पृ. 104

15- ------ वही --- पृ. 111

16- दृष्टव्य : प्रो0 पारूकान्त देसाई की व्यक्तिगत काव्य-पोथी से ।

17- मोतिया - रामकुमार भ्रमर - पृ. 46

18- ------ वही ---- पृ. 119

19- एक अकेला : राम कुमार भ्रमर : पृ. 22-23

20- विशेष लेख प्रसंग पट : गुजरात समाचार : दि0 2-2-99, पृ. 6

21- नई बिसात : श्री चंद अग्निहोत्री : पृ. 41

22- ---------- वही ---- पृ. 41

23- ----------वही ----- पृ. 45

24- --------- वही ------ पृ. 180

25- -------- वही ------- पृ. 181

26- हिन्दी उपन्यासों में दलित वर्ग - पृ. 164

27- एक टुकड़ा इतिहास : गोपाल उपाध्याय : पृ.-278

28- जल टूटता हुआ : डॉ0 रामदरश मिश्र : पृ. 43

29- ---------- वही ------ पृ. 353-354

30- कहानी - घुघतिया त्यौहार : वर्ष की चट्टानें (कहानी-संग्रह) -

शैलेश मटियानी : पृ. 560
31- जल टूटता हुआ : डॉ० रामदरश मिश्र : पृ. 335-336
32- --------- वही ---- पृ. 354
33- --------- वही ---- पृ. 389
34- सूखता हुआ तालाब : डॉ० रामदरश मिश्र : पृ. 17
35- --------- वही ---- पृ. 9
36- --------- वही ---- पृ. 117
37- --------- वही ---- पृ. 117
38- स्वातंत्र्योत्तरी हिन्दी उपन्यास : डॉ० पारुकान्त देसाई : पृ. 96-97
39- सूखता हुआ तालाब : डॉ० रामदरश मिश्र : पृ. 7
40- सागर लहरें और मनुष्य : उदयशंकर भट्ट : पृ. 10
41- -------- वही ------- पृ. 85
42- -------- वही ------- पृ. 187
43- विजेन्द्र नारायण सिंह : आलोचना : त्रैमासिक : उपन्यास अंक - जनवरी-जून : 1983, पृ. 32
44- नाच्यौ बहुत गोपाल : अमृत लाल नागर : पृ. 93
45- -------- वही ------ पृ. 343-344
46- -------- वही ------ पृ. 73
47- -------- वही ------ पृ. 73
48- -------- वही ------ पृ. 82
49- -------- वही ------ पृ. 82
50- -------- वही ------ पृ. 92
51- -------- वही ------ पृ. 92
52- -------- वही ------ पृ. 92
53- -------- वही ------ पृ. 92
54- -------- वही ------ पृ. 97

55- नाच्यौ बहुत गोपाल : अमृत लाल नागर : पृ. 97

56- ---------- वही ------ पृ. 97

57- ---------- वही ------ पृ. 98

58- दस्तावेज : अंक -2 : सन, 1979 : पृ. 12

59- नाच्यौ बहुत गोपाल : अमृत लाल नागर : पृ. 151

60- ---------- वही ----- पृ. 151

61- ---------- वही ----- पृ. 151

62- ---------- वही ------ पृ. 152

63- ---------- वही ------पृ. 21

64- ---------- वही -------पृ. 21

65- ---------- वही ------ पृ. 246

66- ---------- वही ------ पृ. 321

67- ---------- वही ------ पृ. 242

68- ---------- वही ------ पृ. 319

69- द्रष्टव्य : रेतीला मोती : अपनी बात : राजकुमार त्रिवेदी : (भारतीय ग्रन्थ माला लखनऊ)

70- पुराण पुरुष : विवेकीराय : पृ. 57

71- लेख : दलित क्रान्ति की दिशा : दिनेश राय : हंस : जून :1999- पृ. 93

72- टपरे वाले : कृष्णा अग्निहोत्री : भूमिका से ।

73- 252 ,उपन्यासों की समीक्षा : भाग-2, सं. सुषमा गुप्ता - पृ. 198

74- टपरे वाले : कृष्णा अग्निहोत्री : पृ. 78

75- ------ वही ------ पृ. 85

76- ------ वही ------ पृ. 94

77- ------ वही ------ पृ. 112

78- मकान दर मकान : बाला दूबे : पृ. 110

79- द्रष्टव्य : भूमिका से : धरती धन न अपना ।
80- द्रष्टव्य : साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास : डॉ0 पारूकान्त देसाई - पृ. 97
81- ---------- वही ----- पृ. 98
82- आधुनिक हिन्दी उपन्यास : सं. भीष्म साहनी : राम जी मिश्र : भगवती प्रसाद निदारिया ।
83- डॉ0 राम विलास शर्मा : मार्क्स और पिछड़े हुए समाज : पृ. 235
84- द्रष्टव्य : धरती धन न अपना : पृ. 167
85- ---------- वही ----- पृ. 27
86- ---------- वही ----- पृ. 157
87- ---------- वही ----- पृ. 57
88- ---------- वही -----पृ. 58
89- हिन्दी उपन्यास में दलित वर्ग : डॉ0 कुसुम मेघवाल : पृ. 143
90- हिन्दी उपन्यास : सामाजिक चेतना : पृ. 185
91- साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास : डॉ0 पारूकान्त देसाई : पृ. 97
92- मानस माला : डॉ0 पारूकान्त देसाई : पृ : 25
93- महाभोज : पृ. 12
94- अजय तिवारी : आलोचना : उपन्यास अंक : जनवरी-जून : पृ. 69
95- नागवल्लरी : प्रकाशकीय वक्तव्य : नागवल्लरी ।
96- साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास : डॉ0 पारूकान्त देसाई : भूमिका से - पृ. 5
97- सी, टाइम्स आफ इण्डिया : 20-7-91
98- नागवल्लरी : पृ. 180-181
99- ------ वही ------ पृ. 182
100- ------ वही ------ पृ. 185
101- द्रष्टव्य : --- वही --- पृ. 187

102- द्रष्टव्य : नागवल्लरी : पृ. 223

103- ---------- वही ----पृ. 69

104- द्रष्टव्य : त्याग पत्र : जैनेन्द्र कुमार : पृ. ४ .

105- छाकों की वापसी : बदी उज़मा : पृ. 108

106- अमीना : नरेन्द्र हरित : पृ. 176

107- -------- वही ---- पृ. 176

108- नदी का शोर : डॉ० आरीग पुडि : पृ. 126

109- -------- वही ----- पृ. 247

110- अभिशाप : आरीग पुडि : पृ. 5

111- --------- वही ---- पृ. 22

112- द्रष्टव्य : ---- वही ---- पृ. 13

113- सबसे बड़ा छल : मधुकर सिंह : पृ. 10

114- ------- वही ------ पृ. 39

115- द्रष्टव्य : सीताराम नमस्कार : मधुकर सिंह : २४ पृ. 24

116- -------- वही ----- पृ. 79

117- -------- वही ----- पृ. 81

118- द्रष्टव्य : छोटी बहू : उदयाशंकर मिश्र : पृ. 76

119- ---------- वही ------ पृ. 79

120- ---------- वही ----- पृ. 79

121- द्रष्टव्य : हंस : अप्रैल : 1999 : रमेश ऋतंभर : पृ. 90

122- एकलव्य : : चन्द्र मोहन प्रधान : पृ. 137-138

123- मानस माला : डॉ0 पारूकान्त देसाई : पृ. 34
124- एकलव्य : चन्द्र मोहन प्रधान : पृ. 138
125- ---------- वही ------ पृ. 137
126- गोपुली गफूरन : शैलेश मटियानी : पृ. 193-194
127- किस्सा नर्मदा बेन गंगूबाई : शैलेश मटियानी : पृ. 101
128- आधा गांव : राही मासूम रज़ा : पृ. 352

* * *